हस्तक्षेप

जनगणना 2011

बाधित
दृष्टि

विखंडित
विचार

भारत नीति प्रतिष्ठान

जनगणना 2011

बाधित दृष्टि

विखंडित विचार

भारत नीति प्रतिष्ठान

हौजखास, नई दिल्ली-110016

इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रतिलिपिकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानान्तरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से, इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी और ढंग से, प्रकाशक की पूर्व अनुमति के द्वारा नहीं किया जा सकता।

प्रकाशक :

भारत नीति प्रतिष्ठान

डो-51, हौज खास

नयी दिल्ली-110016 (भारत)

दूरभाष : 011-26524018

फैक्स : 011-46089365

ई-मेल : indiapolicy@gmail.com

संस्करण : प्रथम, 2010

© भारत नीति प्रतिष्ठान

मूल्य : 50 रुपये मात्र

आवरण सज्जा
नमिता

मुद्रक : भानु प्रिंटर्स, दिल्ली

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना..05

प्रथम अध्याय

जाति गणना..09

द्वितीय अध्याय

राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (एनपीआर)..............................33

परिशिष्ट :

1. ब्रेन स्टार्मिंग सेशन...40
2. प्रो. आशीष बोस के साथ एक संवाद.......................................54
3. भारतीय जनगणना 2011 : चुनौतियाँ एवं परिप्रेक्ष्य......................60
   –प्रो. अमिताभ कुंडु
4. अन्य पिछड़े वर्गों के लिए गठित कुछ आयोगों को संक्षिप्त सूची...65
5. भारत में जनगणना का संक्षिप्त इतिहास.......................................70
6. गतिशील होने वाली (एक जाति से दूसरी जाति में) जातियों की सूची.. 74

प्रस्तावना

स्वतंत्र भारत में जनगणना को लेकर पहली बार विवाद शुरू हुआ है। 2011 की जनगणना का दौर जब शुरू हुआ तब कुछ राजनीतिक दलों एवं बुद्धिजीवियां द्वारा जाति आधारित जनगणना कराने की मांग की गयी। भारतीय समाज में जाति एक यथार्थ है, इससे हम इनकार नहीं कर सकते। अतः इससे जुड़ी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पहलुओं पर लगातार विमर्श भी होता रहा है और इसकी खामियों एवं इसके नकारात्मक प्रभाव को समाप्त करने के लिए देश में एक सहमति भी रही है। सभी विचारधारा एवं सामाजिक-राजनीतिक पक्ष के चिंतकों ने जातिविहीन समाज के निर्माण को महत्व दिया है। महात्मा गांधी, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, डॉ. राम मनोहर लोहिया, पंडित जवाहरलाल नेहरू, पंडित दीनदयाल उपाध्याय आदि का इस सामूहिक चेतना के निर्माण में उल्लेखनीय योगदान रहा है। यह भारत के संविधान में भी प्रतिबिंबित होता है। जाति व्यवस्था से उपजी सामाजिक-आर्थिक समस्याओं क निदान के लिए राज्य को सक्रिय पहल करने का अधिकार तो संविधान ने दिया है, परन्तु इस बात का विशेष रूप मं ध्यान रखा गया है कि नीतिगत विमर्शों में जाति केन्द-बिंदु न बने। यही कारण है कि संविधान में सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन को धुरी बनाया गया है। जाहिर है कि इन सभी सतर्कताओं का उद्देश्य जाति को राजनीतिक विमर्श और राज्य की नीति निर्माण प्रक्रिया से बाहर रखना है। इसी अधिष्ठान ने जनगणना की प्रकृति को निर्धारित करने का काम किया है। स्वतंत्र भारत में जनगणना को नीतिगत तौर पर मानव संसाधन एवं उससे जुड़े पहलुओं की आधिकारिक जानकारी एवं आँकड़ों को स्रोत माना गया और उसका उपयोग सामाजिक-आर्थिक नियोजन एवं विकासोन्मुखी नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन में किया जाता रहा है। जाति आधारित जनगणना को सिरे से नकारते हुए प्रथम जनगणना रिपोर्ट में उसी आम सहमति की ओर संकेत किया गया है। 1951 की जनगणना रिपोर्ट में स्पष्ट तौर पर कहा गया कि "भारत

सरकार जाति के आधार पर समुदायों के बीच अन्तर किये जाने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करने की नीति पहले ही स्वीकार कर चुकी है।"[1]

स्वतंत्र भारत की जनगणना का औपनिवेशिक शासन की जनगणना से भिन्न होना स्वाभाविक है। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा 'शासितों' की जनगणना की जाती थी, जिसमें जनगणना के प्रशासनिक दृष्टि से कुछ लाभदायक आयामों के अतिरिक्त एक अघोषित उद्देश्य साम्राज्यवादी शासन को मजबूत बनाना भी था। जाहिर है कि इस मकसद को पूरा राष्ट्रवादी आंदोलन के आधार पर आघात कर ही किया जा सकता था। परिणामस्वरूप जनगणना का इस्तेमाल 'पहचान की राजनीति' को प्रश्रय देने एवं उसे प्रोत्साहित करने के लिए किया जाता रहा। इसके लिए सामाजिक संरचना में उपस्थित विरोधाभासों को आधार बनाया गया। इसी क्रम में जातीय संरचना की विसंगतियों को उभारा गया और जनगणना की प्रकृति को 'बांटों और राज करो' के सांचे में ढाला गया। उसी के अनुकूल जनगणना की प्रश्नावलियाँ भी तैयार की गयीं।

स्वतंत्र भारत में जनगणना-नीति का औपनिवेशिक जनगणना-नीति से भिन्न होना स्वाभाविक है। इस नीति को निर्धारित करने का सबसे अधिक श्रेय तत्कालीन उप-प्रधानमंत्री एवं गृह मंत्री सरदार बल्लभभाई पटेल को जाता है। उन्होंने इसे स्वतंत्र और निष्पक्ष प्रक्रिया के रूप में विकसित किया जो उनके मरणोपरांत संपन्न पहली (1951) और बाद की जनगणनाओं में परिलक्षित हुआ। इसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषता थी कि इसने जनगणना को पहचान आधारित राजनीति एवं व्यवस्था का उपकरण नहीं बनने दिया। इसके विपरीत इसकी प्रश्नावलियों में पंथनिरपेक्ष एवं विकासोन्मुखी मुद्दों को शामिल किया गया। लेकिन 2011 की जनगणना को राजनीतिक लाभ, सामाजिक समर्थन आधार की नयी संभावनाओं के आईने में देखने की जो प्रवृत्ति सामने आयी है, वह लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती है। जाति आधारित जनगणना की मांग इन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित है। बुद्धिजीवियों का एक वर्ग जातीय आँकड़ों को एकत्रित करने में कोई नुकसान नहीं मानता है। उनकी मान्यता है कि जाति एक ऐसा यथार्थ है, जिससे मुक्ति नहीं पाया जा सकता है। जाति के सीमित उपयोग को वे राष्ट्रीय जीवन के सभी आयामों, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक, का

[1] भारत की जनगणना, 1951 की जनगणना-1953 के स्पेशल ग्रुप की पत्र संख्या 4, भारत सरकार प्रेस के मैनेजर द्वारा प्रकाशित, नयी दिल्ली, 1953, पृ. संख्या 1

जाने-अनजाने में आधार बना देना चाहते हैं। जातीय संरचना की ऐतिहासिक उपयोगिता के अनेक तर्क दिए जाते हैं, परंतु व्यावहारिक स्तर पर इसने सामाजिक जीवन को खंडित करने, सामंतवादी प्रवृत्ति को बनाये रखने, जातीय श्रेणी को संस्थागत करने और फिर जातीय चेतना के आधार पर सामाजिक-राजनीतिक जीवन में ध्रुवीकरण करने का कार्य किया है। इसीलिए जातिविहीन समाज के संकल्प को आम सहमति से राष्ट्रीय उद्देश्य बनाया गया है।

प्रश्न उठता है कि क्या भारत सरकार जनगणना के घोषित उद्देश्यों एवं अधिष्ठान को बदलेगी? वर्तमान राजनीतिक प्रणाली में अंतर्निहित दोषों के कारण जो विवाद उठ खड़ा हुआ है, उस पर रचनात्मक एवं ठोस बौद्धिक हस्तक्षेप की आवश्यकता है। नीतिगत परिवर्तनों जिसका नागरिक समाज पर दूरगामी प्रभाव अवश्यंभावी है, उसे राजनीतिज्ञों के हाथों में पूरी तरह नहीं छोड़ा जाना चाहिए।

2011 की जनगणना के साथ एक और भी विवाद जुड़ा है। जनगणना के पहले दौर के साथ 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर' (रा.ज.र.) को भी जोड़ दिया गया है। इस देश में 'सामान्य निवासियों' का एक रजिस्टर तैयार करने के लिए जानकारियां इकट्ठी की जा रही हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसा करने के दौरान इस देश में रह रहे करोड़ों घुसपैठियों की पहचान करने की जो सावधानी बरती जानी चाहिए थी, वह तो नहीं ही बरती जा रहो है, इसके विपरीत उन्हें सुगमता से इस देश के निवासी होने की वैधानिकता प्रदान की जा रही है। इस राजनीतिक परियोजना के पीछे जो दृष्टि है, उस पर गंभीर विमर्श की आवश्यकता है, जिससे सरकार बचती रही है। इस रजिस्टर के द्वारा नागरिक, गैर नागरिक, अवैध रूप से रह रह लोगों एवं घुसपैठियों के बीच के अंतर को समाप्त कर यहां निवास करने वाले विभिन्न श्रेणियों के लोगों को एक श्रेणी में स्थापित करने का काम किया जा रहा है।

इन दोनों मुद्दों पर 'भारत नीति प्रतिष्ठान' ने लंबी बहस चलायी है, जिसमें बौद्धिक और शैक्षिक जगत के लोगों ने गंभीरता से हिस्सा लिया है। स्वस्थ लोकतंत्र इसी प्रकार के रचनात्मक बहस, विमर्श, संवाद एवं आलोचनात्मक शोधपरक हस्तक्षेपों पर निर्भर करता है। इसी क्रम में हस्तक्षेप (पेपर) **'जनगणना 2011 : बाधित दृष्टि, विखंडित विचार'** व्यापक भागीदारी के आधार पर तैयार किया गया है। इसका उद्देश्य जनगणना एवं रा.ज.र. पर एक आम सहमति बनाना है, ताकि जनगणना का अराजनीतिक चरित्र एवं विकासोन्मुखी स्वरूप बना रहे।

प्रतिष्ठान उन सभी विद्वानों एवं शोधकर्त्ताओं का आभारी है, जिन्होंने इस बौद्धिक परिचर्चा एवं अनुसंधानोन्मुखी परियोजना में सक्रिय भागीदारी निभायी है। प्रतिष्ठान वरिष्ठ पत्रकार एवं फेलो श्री उदय सिन्हा के योगदान के प्रति विशेष आभार व्यक्त करता है। इस संदर्भ में प्रतिष्ठान जनगणना विशेषज्ञों-प्रो. आशीष बोस, प्रो. महेन्द्र कुमार प्रेमी तथा प्रो. अमिताभ कुंडु, श्रीमती आशा दास, श्री आर. वेंकट नारायणन और प्रो. राजवीर शर्मा के सहयोग के लिए भी आभारी है। अनिल कुमार, जयशंकर, राजू रंजन, वृन्दावन मिश्रा, सुभाषचन्द, राजीव कुमार, श्री विद्या, प्रफुल्ल चंद्र एवं जितेन्द्र वझे आदि शोधकर्ताओं ने शोध-परियोजना में सक्रिय भागीदारी निभायी है। नेहरू मेमोरियल म्यूजियम लाइब्रेरी (तीनमूर्त्ति) के दस्तावेजों का उपयोग किया गया, इसके लिए हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। और अंत में मैं प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री बजरंगलाल गुप्ता एवं ट्रस्ट के सभी सदस्यों के उत्साहवर्द्धक सहयोग के लिए आभार व्यक्त करता हूं।

आशा है कि यह शोधपरक कार्य जनगणना पर चल रही बहस में एक सार्थक योगदान कर पाएगा।

- प्रो. राकेश सिन्हा
मानद निदेशक, भारत नीति प्रतिष्ठान

<u>अध्याय-एक</u>

जाति गणना

जनगणना में जाति के संबंध में जानकारी हासिल करने की मांग अचानक क्यों उठायी गयी? जिस देश में गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर करने वाले लोगों, शुद्ध पेयजल से वंचित आबादी तथा प्राथमिक विद्यालयों तक नहीं पहुँच सकने वाले बच्चों जैसे बुनियादी प्रश्नों पर सही आंकड़े और आधिकारिक रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं हैं, उस देश में जनगणना को एक ऐसे प्रश्न से उलझाने का प्रयास करना कहाँ तक उचित है? क्या यह भारतीय राज्य एवं आम सहमति द्वारा स्थापित अधिष्ठान को बदलने जैसा नहीं है? स्वतंत्रता के बाद देश के राजनेताओं एवं संविधान निर्माताओं ने 'जाति' को राजनीतिक और लोक नीति-विमर्श से अलग रखने का फैसला किया था। वे इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि औपनिवेशिक शासकों ने 'जाति', 'भाषा' और 'नस्ल' जैसे प्रश्नों का उपयोग राष्ट्रवादी चेतना को कमजोर करने के उद्देश्य से किया था। किंतु वर्तमान जनगणना में जाति गणना का शामिल किए जाने के लिए यह तर्क दिया जा रहा है कि जातियों के आंकड़ों से 'पिछड़ी जातियों' के उत्थान के लिए सकारात्मक कदम उठाने में सहयोग मिलेगा। इस पर एक प्रतिप्रश्न उठ सकता है कि इसके लिए जनगणना कैसे उपयोगी होगी? राज्यों में पिछड़े वर्गों के लिए बने आयोगों द्वारा बखूबी से 'पिछड़ी' एवं 'अति पिछड़ी' जातियों की पहचान की जाती रही है और उनके सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न योजनाएं भी क्रियान्वित की जाती रही हैं। जनगणना आँकड़ा एकत्रित करने का एक गहन कार्य है। इसमें 'जाति' को शामिल करने से सामाजिक-आर्थिक पक्ष गौण हो जाएगा और यह 'जातीय चेतना' पैदा करने या उसे बढ़ाने में एक उपकरण की तरह प्रयुक्त होगा। इसलिए एक सीधा सवाल खड़ा होता है कि जातिगत आधार पर जनगणना करने के पीछे का उद्देश्य क्या है : सामाजिक या राजनीतिक?

औपनिवेशिक दृष्टिकोण

साम्राज्यवादी शासन के दारान भारत में पहली बार जनगणना का औपचारिक प्रयास 1861 में हुआ।[2] जाति आधारित जनगणना दूसरी जनगणना (1871-72) में शुरू की गई। 1901 में जाति गणना को प्रशासनिक, राजनीतिक और सामाजिक उद्देश्यों से जोड़ने का काम सर हरबर्ट रिज्ले के निर्देशन में किया गया। लेकिन 1911 की जनगणना में ही विस्तृत रूप से जाति की गणना हो पायी। यद्यपि जातियों की अखिल भारतीय स्तर पर समरूपता और सटीकता के साथ गणना करने में कठिनाइयाँ हुईं। जातियों की जो पहचान एक स्थान पर हो, दूसरे स्थान पर भी वही हो, ऐसा नहीं था। फलतः नीति-निर्माताओं के लिए एक भ्रम की स्थिति उत्पन्न हुई। इस भ्रम की स्थिति को समाप्त करना आसान नहीं था। औपनिवेशिक शासकों के दो उद्देश्य थे। पहला, 'पहचान की राजनीति' को प्रोत्साहित करना और दूसरा, सामाजिक विरोधाभासों का उपयोग राजनीति में करना। साथ ही व इसे 'शासितों को सभ्य बनाने के लिए आवश्यक मिशन' भी मानते थे।

स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान निर्माताओं ने जनगणना के आंकड़े को तटस्थ आंकड़ों के रूप में देखा, ताकि उन आंकड़ों का उपयोग सूक्ष्म स्तर पर विकास कार्यों के लिए किया जा सके। प्रो. आशीष बोस ने सामाजिक विज्ञान की दृष्टि से आंकड़ों के संग्रह एवं जनगणना की प्रकृति में गुणात्मक अंतर माना है। सामाजिक विज्ञान उद्देश्यपूर्ण आंकड़ों का संग्रह करता है, जबकि जनगणना की प्रकृति तटस्थ होती है। उनके अनुसार "यदि 2011 की जनगणना में जाति को शामिल किया गया, तो जनगणना का सत्यानाश हो जायेगा।"[3] प्रो. बोस का मानना है कि औपनिवेशिक नौकरशाही ने ब्रिटेन की महारानी को भारत में जनगणना के लिए जो स्मरण-पत्र (Memorandum) दिया था, उसमें 'शासितों' को 'सभ्य' बनाने के लिए इसे जरूरी माना गया था। वे भारत के लोगां के बारे में जानने के लिए भी उत्साहित थे। बाद में उन्होंने यह महसूस किया कि जाति, भाषा और धर्म के आधार पर जनसंख्या का वर्गीकरण साम्राज्यवाद के भी हित में है। 3 मई, 1862 को लार्ड एल्गिन को भेजे एक पत्र में राज्य सचिव चार्ल्स वुड ने लिखा कि "हमने एक के खिलाफ दूसरे को

---

[2] दखें, भारत में जनगणना का संक्षिप्त इतिहास, परिशिष्ट- V

[3] देखें, परिशिष्ट- II , डॉ. आशीष बोस के साथ संवाद

खड़ा कर अपनी सत्ता पुनः कायम कर ली है, और हमें इसे निरंतर बनाए रखना होगा। सबके अंदर एक का भाव न पनप सके, इसे रोकने के लिए आप जो कर सकें, करें।" और 10 मई को वुड ने अपने प्रत्युत्तर में लिखा कि "जातियों के बीच स्वभावगत द्वेष हमारी शक्ति के लिए महत्वपूर्ण तत्व है।" इसी पृष्ठभूमि को सामने रखकर प्रो. एम. एन. श्रीनिवास एवं जी. एस. घुरिये ने औपनिवेशिक जनगणना पर दो प्रश्न उठाये हैं : "(क) औपनिवेशिक अधिकारियों ने व्यक्तिगत स्तर पर जाति का रिकॉर्ड क्यों बनाया? तथा (ख) क्या यह महज उत्सुकतावश किया गया या यह किसी व्यूहरचना कि भारतीय समाज के भीतर विभाजक प्रवृत्तियों को जीवित रखना है, का हिस्सा था?" उनका दूसरा प्रश्न जनगणना कार्य के प्रभावों को संदर्भित करता है, जिससे जातीय चेतना उत्पन्न होती है और जाति व्यवस्था के अंदर वैधता पाने के लिए वे अपनी नई प्रस्थिति का दावा करने लगते हैं।[4] इस प्रकार, जनगणना की ऐसी प्रवृत्तियों से उस समय के साम्राज्यवादी शासकों की मानसिकता उजागर होती है।

स्वतंत्र भारत में जनगणना शासितों की नहीं, नागरिकों की हो रही है। इसलिए यह अपेक्षा की जाती है कि बेरोजगारी, जीवन स्तर, शिक्षा, साक्षरता और स्वास्थ्य जैसे मुद्दों पर सटीक एवं गहन आंकड़े इकट्ठे किये जाने चाहिए। प्रो. बोस का मानना है कि समकालीन भारत में बेरोजगारी एवं भुखमरी दो बड़े सवाल हैं, जिन पर सटीक एवं उपयुक्त आंकड़े उपलब्ध कराये जाने चाहिए। तभी इन समस्याओं के समाधान के लिए प्रभावी रूप से नीति निर्माण एवं उनका क्रियान्वयन किया जा सकता है। उनका मानना है कि "जनगणना में 'आय' की भी जानकारी इकट्ठी की जानी चाहिए, जिससे हमें गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों की संख्या की सही जानकारी मिल सके।"[5]

जाति आधारित जनगणना से जातियों एवं उपजातियों के बीच एक अनपेक्षित एवं अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा का खतरा बना रहता है। अतः इस उद्देश्य से इकट्ठे किये गए आँकड़ों के गलत एवं भ्रामक होने की संभावनाओं से इनकार नहीं किया जा सकता। जनगणना अधिकारी को जनता द्वारा दी गई सूचना को न तो सार्वजनिक करने का अधिकार है, न ही

---

[4] बर्नार्ड कोहेन द्वारा 'द सेंशस, सोशल स्ट्रक्चर एंड ऑब्जेक्टिफिकेशन इन साउथ एशिया' में उद्धृत, पृ. 241, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987

[5] देखें परिशिष्ट-II, डॉ. आशीष बोस के साथ संवाद

उसको सत्यापित करने का। 1911 की जनगणना के दौरान इसो तरह की समस्याओं से जूझना पड़ा था। पंजाब के तत्कालीन अधीक्षक खान अहमद हसन खान के अनुसार, "... जाति आधारित जनगणना की सफलता की अपेक्षा इसलिए नहीं रखी जा सकती है कि प्राय: सभी जातियाँ अपने आपको दूसरों से अलग एवं उच्च श्रेणी का मानती हैं। नाइयों ने ब्राह्मण या राजपूत, मिरासियों ने कुरेसियों तथा लोहार और तारखान ने धिमन ब्राह्मण के रूप में स्वयं की गणना करवाना चाहा।"[6]

देश की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में आये परिवर्तन ने दूसरे प्रकार की गलत जानकारियों की संभावनाओं को बढ़ा दिया है। संविधान द्वारा 'पिछड़े वर्गों' को आरक्षण का लाभ दिये जाने को देखते हुए जातियों के बीच पिछड़ी जाति बनने की होड़ पैदा हो सकती है। फलत: जनगणना के दौरान संग्रहित जाति, व्यवसाय एवं जीवन की आदतों से जुड़ी सूचनाएं एवं जानकारियां त्रुटिपूर्ण हो सकती हैं। ऐसी त्रुटिपूर्ण जानकारियाँ 1911 की जनगणना में पायो गयो थों एवं 1921 की जनगणना में भी जातियों की गणना पर आशंकायें व्यक्त की गई थीं। जनगणना रिपोर्ट की स्वीकारोक्ति गौरतलब है। तत्कालीन जनगणना अधीक्षक वी.आर. थ्याराजअय्यर ने जाति जनगणना पर सवाल करते हुए पूछा था कि "क्यों नहीं हम इसे समाप्त कर देते हैं... जनगणना में जाति पूछना कुछ हद तक यह धारणा बनाती है कि सरकार जाति संस्था के वर्तमान स्वरूप एवं सामाजिक स्तर में जो विषमता चली आ रही है, उसका समर्थन करती है, जबकि सत्य कुछ और ही है।"[7]

प्रो. राजवीर शर्मा जाति आधारित जनगणना पर सवाल खड़ा करते हुए कहते हैं कि "वर्तमान समय में जब समाज विभिन्न स्तरों या जातियों में बंटा हुआ है, वैसे समय में विकास का समग्र दृष्टिकोण अपनाने को आवश्यकता है। गरीबी उन्मूलन को ध्यान में रखते हुए नीतियाँ बनाने की जरूरत है न कि जाति आधारित नीतियों की।"[8]

---

[6] भारत की जनगणना, 1921, खंड 23, वी आर थ्याराजअय्यर, कार्यकारी अधीक्षक, जनगणना, मैसूर राज्य, पृ. 114

[7] वही

[8] देखें, परिशिष्ट- I, ब्रेन स्टार्मिंग सेशन

संविधान की मूल भावना

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जिन मूल्यों पर जोर दिया गया था, उनमें भाषा, प्रांत, सम्प्रदाय एवं जाति जैसे विभेदों को समाप्त करना था। संविधान सभा में इसकी स्पष्ट और प्रभावी छाप दिखाई पड़ती है। डॉ. अम्बेडकर ने तो यहाँ तक कह दिया था कि जाति 'राष्ट्र-विरोधी' अवधारणा है। उन्होंने कहा था कि "हजारों जातियों में विभाजित लोग कैसे एक राष्ट्र हो सकते हैं? जितनी जल्दी हम यह अनुभूति कर लें कि सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक स्तरों पर हम एक राष्ट्र हैं, हमारे लिए उतना ही अच्छा होगा। तभी हम एक राष्ट्र बनने की आवश्यकता महसूस कर सकते हैं और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गंभीरतापूर्वक रास्ता ढूंढ़ सकते हैं। यह लक्ष्य प्राप्त करना बहुत कठिन है-संयुक्त राज्य अमरिका से भी कठिन। अमेरिका में जाति व्यवस्था नहीं है, जबकि भारत में जाति व्यवस्था है। जातियाँ राष्ट्र-विरोधी होती हैं, क्योंकि वे सामाजिक जीवन में अलगाव पैदा करती हैं। वे इसलिए भी राष्ट्र-विरोधी होती हैं कि वे जातियों के बीच में वैमनस्य एवं ईर्ष्या पैदा करतो हैं, लेकिन हमें इन कठिनाइयों से उबरना होगा, यदि हम एक राष्ट्र के रूप में स्थापित होना चाहते हैं।"[9] संविधान निर्माताओं को इस बात की पूरी अनुभूति थी कि जाति व्यवस्था जो तीन हजार से भी अधिक वर्षों से अस्तित्व में है, उसके नकारात्मक आयामों को कानून के द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता। अत: उन्होंने जाति को सार्वजनिक जीवन एवं राज्य की नीति-निर्माण प्रक्रिया आदि से पूरी तरह बाहर रखने पर जोर दिया। इसी कारण से संविधान में भी पिछड़ी जातियों की जगह 'पिछड़े वर्गों' शब्द का प्रयोग किया गया।

पहली जनगणना रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया कि भारत सरकार ने यह नीतिगत रूप से स्वीकार कर लिया है कि जाति के आधार पर लोगों के बीच के अन्तर को प्रोत्साहन नहीं देना है। संविधान में 'जाति' शब्द का प्रयोग अनुसूचित जातियों के संदर्भ में या राज्य द्वारा जाति के आधार पर अंतर नहीं करने के उद्देश्य से हुआ। भारतीय समाज को जातीय, सामंती और विभाजनकारी प्रवृत्तियों से मुक्त रखने के लिए 'जातिविहीन समाज' को सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर सम्मानजनक आदर्श के रूप में स्वीकार किया गया। जातियों के बीच के भेद और उससे कालांतर में उपजे पद-सोपान (Hierarchy) को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक माना गया कि समाज को पूर्वाग्रहों एवं विभेदों से मुक्त रखा जाये।

[9] बी.आर. अंबेदकर, डिबेट, कंस्टीटुएंट असेंबली ऑफ इंडिया, वाल्यूम 11, शुक्रवार, 25 नवंबर 1949

स्वतंत्रता के पश्चात प्राय: सभी राजनीतिक-सामाजिक दर्शनों एवं विचारधाराओं ने इस आदर्श को अपनाने का काम किया है। जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में, "... इन सबके बावजूद, संविधान का मूल उद्देश्य, जैसा कि मैं मानता हूँ और राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों से भी जाहिर होता है, जातिविहीन एवं वर्गविहीन समाज की स्थापना करना है।"[10] समाजवादी नेता डॉ. राम मनोहर लोहिया ने जाति भेद को समानतामूलक समाज की स्थापना में सबसे बड़ी अड़चन माना। उनके अनुसार, "जातियों के अस्तित्व को बनाये रखते हुए समानता की बात करना निरर्थक है। जातियों को समाप्त करना होगा। यहाँ तक कि (जाति सूचक) सम्बोधनों को भी समाप्त कर देना चाहिए।" जातिवाद का राजनीति पर प्रभाव किस हद तक होता है और लोकतंत्र के लिए कितना नुकसानदायक है, यह जनसंघ के नेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय के कथन से भी प्रकट होता है : "भारत में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी जाति का अंग है। अत: दूसरे दलों पर जातीयता एवं संकीर्णता का आरोप लगाने से अनजाने में ही देश में इस भावना को अप्रत्यक्ष रीति से और अधिक बल मिलता है।... यदि परिस्थिति यहाँ तक बिगड़ती है कि डॉ. राम मनोहर लोहिया जैसे व्यक्ति को चुनाव मैदान से इसलिए हटना पड़े कि वे उक्त निर्वाचन क्षेत्र में निवास करने वाले मतदाताओं की बहुसंख्यक जाति के नहीं हैं, तो यह एक गंभीर बात हागी, परन्तु इसके निराकरण का उपाय तो यही है कि दल के संगठन को दृढ़ बनाया जाये, न कि जाति के आधार पर मतदाताओं से अपील की जाये।"[11] इस प्रकार जाति के प्रश्न पर जो सहमति बनी थी, वही भारतीय राज्य एवं राजनीति के दर्शन का अधिष्ठान बन गया।

जाति को जनगणना में शामिल करना सिर्फ संख्यात्मक पक्ष या सामाजिक यथार्थ की जानकारी तक सीमित नहीं होगा। जातियों के बीच उसी प्रकार की भावना, चेतना और मानसिकता को बल मिल सकता है, जिसको पाटने के लिए आधुनिक भारत में लंबे समय तक विमर्श, रचनात्मक एवं सुधारात्मक प्रयास होते रहे हैं। एम. वी. कामथ का मानना है

---

[10] जवाहरलाल नेहरू, लोकसभा परिचर्चा, वॉल्यूम-12-13 (खंड-2), 13 जून 1951 को लोकसभा में हुई परिचर्चा पर आधारित, पृ. सं. 830-31

[11] क्या मतदाता समय की चुनौती का उत्तर देंगे? पांचजन्य, 5 फरवरी, 1962, पृ. 19

कि "अगर जाति आधारित जनगणना को स्वीकार कर लिया जाता है, तो इससे जाति व्यवस्था सुदृढ़ होगी।"[12]

जाति गणना के औचित्य को अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की गणना के आधार पर भी स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियों एवं ऐतिहासिक कारणों से लोकसभा एवं विधानमंडलों में आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। सामाजिक कुरीतियों, बंधनों एवं दबाव से मुक्त करने के लिए पिछड़े वर्गों की गणना को अत्यावश्यक माना गया है। संविधान में अनुच्छेद 330 एवं 332 उनके राजनीतिक प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करता है। यह प्रावधान भी उसी सहमति एवं अधिष्ठान का हिस्सा है। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के अतिरिक्त अन्य पिछड़ी जातियों को पिछड़ेपन के सुविचारित मापदंडों के आधार पर 'पिछड़ वर्गों' के अंतर्गत चिह्नित कर, उन्हें राज्य के द्वारा न्यायोचित अवसर प्रदान किया जाता है। ऐसे वर्गों को चिह्नित करने में स्थानीय सामाजिक-आर्थिक संरचना, वातावरण और देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इसलिए राज्य स्तरों पर अन्य पिछड़ा वर्ग आयोगों एवं राष्ट्रीय स्तर राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया गया, जिनकी भूमिका पर भी सहमति रही है। जहाँ भी इस प्रकार की जानकारी नीतियों के निर्माण और संतुलित सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है, वहाँ सरकार इन संस्थाओं या सामाजिक विज्ञानियों का उपयोग कर सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर जानकारी हासिल करती रही है। और सकारात्मक कदम उठाने के लिए ऐसा करना संविधान की मूल भावना एवं समानतामूलक समाज की कल्पना के अनुकूल माना जाना चाहिए। फिर जनगणना को जाति गणना का माध्यम क्यों बनाया जाये? इससे जनगणना का मूल चरित्र तो बदल ही जायेगा साथ ही इसका विकासोन्मुखी पक्ष भी दबकर रह जायेगा। प्रो. महेन्द्र कुमार प्रेमी मानते हैं कि जाति को जनगणना का हिस्सा बनाते ही सभी स्तरों पर विमर्श में जाति का वर्चस्व स्थापित हो जाएगा और यह "जनगणना के आँकड़ों को प्रदूषित करने का काम

---

[12] अव्यॉड क्वागमायर ऑफ कास्ट सेन्सस, प्लीज, फ्री प्रेस जनरल, (मुंबई से प्रकाशित दैनिक), अग्र लेख, 24 जून 2010

करेगा। इसके आँकड़ों का उपयोग बुनियादी प्रश्नों के निदान के लिए नियोजन में होना चाहिए।"[13]

परिवर्तनशील संरचना

जातीय संरचना एवं व्यवस्था को स्थायी एवं स्थिर मानना उचित नहीं है। इसमें नकारात्मक एवं सकारात्मक परिवर्तन की संभावनायें बनी रहती हैं। प्रगतिशील एवं सुधारात्मक वातावरण जातीय व्यवस्था को लचीला, सामंजस्यवादी, गतिशील और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के अनुकूल बनाता है। सुधार आंदोलन एवं शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ आधुनिकता की लहरों ने परंपरागत जातीय संरचना, जातियों के बीच परस्पर सम्बंधों और उनके बीच पनपने वाले पूर्वाग्रहों में सकारात्मक परिवर्तन लाने का काम किया है। सामाजिक प्रगति के इस सूचकांक को स्वतंत्र भारत की एक उपलब्धि माना जाना चाहिए, यद्यपि समस्या की तुलना में समाधान की खुराक अभी भी बहुत कम है। स्वतंत्रता के 60 वर्ष बीत जाने के बावजूद आर्थिक विकास का अपेक्षित गुणात्मक एवं मात्रात्मक लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाया है। विशेषकर शिक्षा एवं रोजगार के क्षेत्र में अभावग्रस्तता ने जातियों को आरक्षण का लाभ लेने के लिए प्रेरित किया है। इस प्रकार औपनिवेशिक काल के भिन्न सामाजिक संरचना और जातियों की गतिशीलता पर संसाधन एवं अवसर की न्यूनता अर्थात आर्थिक दबाव का प्रभाव है। अतः जातियों का प्रवाह उर्ध्वगामी की जगह अर्ध्वगामी हो गया है। जातियाँ राज्य पर कल्याणकारी योजनाओं की परिधि को बृहद करने के लिए दबाव डाल रही हैं। यही कारण है कि 'अन्य पिछड़े वर्गों' में जातियों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। पहला पिछड़ा आयोग काका कालेकर की अध्यक्षता में गठित हुआ था। इसने 2,399 जातियों को पिछड़ा घोषित किया था। दूसरा पिछड़ा आयोग बी.पी. मंडल की अध्यक्षता में 1978 में गठित हुआ था। इसने 3,743 जातियों को पिछड़ा घोषित किया था। राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग ने 5700 जातियों को इस श्रेणी में रखा है। असंतुलित विकास एवं विषमतामूलक आर्थिक नीति ने राज्य के सामाजिक दृष्टिकोण को बाधित कर दिया है। इसी का परिणाम है कि 2011 की जनगणना में जब जाति को सम्मिलित करने की मांग हुई, तो उस पर दृढ़तापूर्ण, तार्किक और दूरदृष्टि

---

[13] पो. महेन्द्र कुमार प्रेमी, जनगणना विशेषज्ञ एवं जेएनयू के सेवानिवृत प्रोफेसर हैं, प्रतिष्ठान के साथ बातचीत का अंश

पूर्ण, समाधानमूलक जवाब राज्य के द्वारा नहीं दिया जा सका। यह साफ तौर पर खंडित राजनीति का एक दुष्परिणाम है।

प्रश्न उठता है कि देश समानतामूलक समाज के इच्छित और घोषित उद्देश्य को कैसे प्राप्त कर सकता है? इस प्रश्न का सीधा एवं सरल उत्तर शिक्षा, रोजगार, आय, धन के वितरण आदि में विषमतामूलक प्रवृत्तियों और शक्तियों पर नियंत्रण कर समाज के अंतिम व्यक्ति के हित को केन्द्र में रखकर नीतियों का निर्माण किया जाना होगा। राज्य के नीति-निदशक तत्वों में समानता, शिक्षा और रोजगार सम्बन्धी निर्देश सबसे अधिक उपेक्षित रहे हैं। काका कालेकर ने भी कहा था कि जाति के आधार पर आरक्षण देश एवं समाज के दूरगामी हित में नहीं होगा। संसद में काका कालेकर आयोग की अनुशंसा पर कार्य योजना की रिपोर्ट (Action Taken Report) प्रस्तुत करते समय कहा गया था कि जाति व्यवस्था हमारे समानतामूलक लक्ष्य की प्राप्ति के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा है। और ऐसी परिस्थितियों में कुछ जातियों को 'पिछड़ा' घोषित करना वर्तमान जाति व्यवस्था को पुष्ट करने जैसा होगा। तत्कालीन गृह मंत्री श्री गोविंद बल्लभ पंत ने कहा था कि "कुछ लोगों के द्वारा असहमति (आयोग की रिपोर्ट तैयार करने के दौरान), जाति पर आग्रह को और भी अधिक ध्यान में ला देता है। इसमें जिस प्रकार की भावना एवं शब्दों का प्रयोग हुआ है, वह इस खतरे की प्रबलता को बल प्रदान करता है कि इस प्रकार के दृष्टिकोणों में अलगाववाद निहित है। इस बात से कतई इनकार नहीं किया जा सकता है कि जाति व्यवस्था समानतामूलक समाज के लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक है और कुछ विशिष्ट जातियों को पिछड़ा मानने से वर्तमान जाति व्यवस्था को बनाये रखने और यहां तक कि जाति के आधार पर भेदभाव करने की परंपरा जारी रह सकतो है। इन जातियों के अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी जातियां हो सकती हैं, जिसके सदस्यों को शैक्षिक एवं भावनात्मक रूप से पिछड़ा वर्गीकृत किया जा सकता है। लेकिन दूसरी ऐसी भी जातियां हो सकती हैं, जिन्हें पिछड़ी जाति के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है।"

इसके लगभग साढ़े तीन दशकों के बाद मंडल आयोग की रिपोर्ट पर लोकसभा में बहस के दौरान विपक्ष के तत्कालीन नेता राजीव गाँधी ने पंत की ही भावना को नए संदर्भ एवं अपने शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त किया, "क्या सरकार अपने किसी एक विशिष्ट हित को देख रही है या वह सचमुच में सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों को देख रही है? दूसरी बात, जिसे राष्ट्रीय लक्ष्य का हिस्सा होना चाहिए, वह है जातिविहीन समाज

की स्थापना। संविधान बहुत ही स्पष्टता के साथ अनुसूचित जातियों एवं पिछड़े वर्गों में अंतर करता है। हमारे संविधान निर्माताओं ने यह अंतर क्यों किया? उनके मस्तिष्क में जरूर कुछ था। हमने आज उस अंतर को क्यों भूला दिया है? ...महाशय, क्या आज भी हमारा जातिविहीन समाज की स्थापना का वही उद्देश्य है?........ अगर आप जातिविहीन समाज में विश्वास करते हैं, तो आपको भी वही कदम उठाने चाहिए, जो जातिविहीन समाज की ओर ले जाए और आपको ऐसे कदम कदापि नहीं उठाने चाहिए, जो जातिवादी समाज की ओर ले जाए...।"[14] दुर्भाग्य से जातिविहीनता का यह लक्ष्य वर्तमान राजनीतिक विमर्श से लुप्त होता जा रहा है। यही कारण है कि अधिकांश राजनीतिक दलों ने या तो जाति आधारित जनगणना का समर्थन किया है, या वे असमंजस में फंसे हुए हैं।

आर. वेंकट नारायण इस बात पर जोर देकर कहते हैं कि जाति को जनगणना में शामिल नहीं करना पिछले 60 सालों से राज्य की नीति रही है। फिर अचानक इस नीति मं कैसे परिवर्तन किया जा सकता है और स्थापित परंपरा को कैसे बदला जा सकता है? उसी प्रकार भारत सरकार के सामाजिक न्याय मंत्रालय की पूर्व सचिव आशा दास उनके विचारों से सहमति व्यक्त करती हुई कहती हैं कि "मैं समझ नहीं पा रही हूँ कि सरकार जाति आधारित जनगणना के प्रति क्यों रुझान दिखा रही है?"[15] वे इसे राजनीतिक कारणों से प्रेरित निर्णय मानती हैं।

जनगणना का लक्ष्य राज्य एवं उसकी एजेंसियों को वैसी नीति के निर्माण के लिए उपयोगी आंकड़े प्रस्तुत करने होते हैं, जिनसे बुनियादी समस्याओं से निबटने में मदद मिल सके। पहली जनगणना (1951) ने देश विभाजन के कारण विस्थापित लोगों को बसाने, उन्हें सकारात्मक रूप से मदद पहुँचाने में राज्य एवं उसकी एजेंसियों को मदद किया था।

प्रो. आशीष बोस का साफ मानना है कि राज्य का सकारात्मक कदम गरीबों एवं पिछड़ों के हितों को ध्यान में रखकर उठाया जाना चाहिए, न कि जाति के आधार पर। गरीब और भूखे नागरिकों को इसका लाभ मिलना चाहिए, चाहे वे किसी भी जाति के क्यों न हों। सकारात्मक कदम के तहत नीतियों का निर्माण निर्धनों और भुखमरी के शिकार लोगों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए और अन्य पिछड़ी जातियों के गरीबों और ऊँची जाति

---

[14] राजीव गांधी, भारतीय संसद में परिचर्चा, 6 सितंबर 1990, पृ. 481-532

[15] ब्रेन स्टार्मिंग सेशन, भा.नी.प्र.

के निर्धनों में भेद नहीं किया जाना चाहिए। वे कहते हैं, "यदि जनगणना इसी उद्देश्य से की गई तथा गरीबी और भुखमरी पर आंकड़े इकट्ठे करने को सबसे अधिक महत्व दिया गया, तो जातियों के विवाद स्वत: नेपथ्य में चले जाएंगे।"[16]

मीडिया में विमर्श

जाति आधारित जनगणना की मांग राजनीतिक स्तर पर हुई है, लेकिन राजनीतिक क्षेत्र में समाज, राज्य एवं संविधान के संदर्भ में बहस के नाम पर प्रेस व्यक्तव्य जारी होता रहा है। अत: यही कारण है कि यह बहस समाज या शैक्षिक जगत को उद्वेलित करने में सफल नहीं हो पाई है। मीडिया मं तात्कालिक प्रतिक्रिया के तौर पर यह बहस चली है, जो प्राय: स्तंभकारों तक ही सीमित रही है। इस बहस को तीन वर्गों मं विभाजित कर देखा जा सकता है : पहला, वे लोग जो जाति आधारित जनगणना को समकालीन भारत के लिए आवश्यक एवं प्रासंगिक मानते हैं। इसके पीछे मुख्य तर्क यह दिया जाता है कि "'जाति के कारण लाभान्वित' (कथित सवर्ण) एवं 'जाति के कारण वंचित' और पिछड को एक धरातल पर नहीं रखा जाना चाहिए।"[17] वे ऊँचे वर्ग को ऊँची जाति एवं निम्न वर्ग को कथित निम्न जाति का पर्यायवाची मानते हैं। जाति आधारित जनगणना के पक्ष में यह भी तर्क दिया जाता है कि इससे असमानता और भेदभाव से लड़ने एवं पिछड़ेपन को दूर करने के लिए राज्य के द्वारा सकारात्मक कदम उठाने में मदद मिलेगी अत: इसके लिए जातियों (विशेषकर पिछड़ी जातियों) के सही आंकड़े प्राप्त करना वे आवश्यक मानते हैं।[18] इसके पक्षधर जाति आधारित जनगणना से जातिवाद के फैलने के तर्क को स्वीकार नहीं करते हैं। योगेन्द्र यादव का मानना है कि "धार्मिक समुदायों की गिनती से मुल्क की धर्मनिरपेक्षता समाप्त नहीं हुई है। अमेरिका

---

[16] प्रो. आशीष बोस, भा.नी.प्र. के साथ बातचीत, 8 मई 2010

[17] सतीश देशपांडे और मैरी इ जॉन, द इकॉनोमिक एंड पालिटिकल वीकली, 19 जून 2010, पृ. 39-42

[18] डॉ. डी. प्रेमपति, मस्तराम कपूर, राजकिशोर, उर्मिलेश, प्रो. चमन लाल, डॉ. निशांत कैसर, श्रीकांत और दिलीप मंडल, जनगणना 2011 में सभी जातियों, समुदायों की गिनती के पक्ष में हम क्यों हैं?, नई दुनिया, 21 मई 2010

में नस्ल की गिनती से वहाँ की नीतियाँ नस्लवादी नहीं हुई हैं, तो एक या एक से अधिक जातियों की गिनती से भारत भी जातियों के संघर्ष या गिरोहबंदी में तब्दील नहीं होगा।"[19]

बहस में दूसरा वर्ग जाति आधारित जनगणना को जातिवाद से लड़ने, जातियों को समाप्त करने एवं आरक्षण की सुविधा ले रहे पिछड़े वर्गों के कृमि लेयर को इससे बाहर करने के अवसर के रूप में देखता है। वे मानते हैं कि जातिवाद को सबल बनाने या बनाये रखने का काम जाति आधारित सामाजिक संरचना एवं राजनीति करती है। आशुतोष के अनुसार, "इस देश में चुनाव सबसे बड़ा जातिवादी आयोजन या मेला है। .....(लेकिन) आज भी हम भारतीय बाद में हैं और तिवारी, कुर्मी, बनिया, यादव पहले हैं।"[20] नीलाभ मिश्र जाति आधारित जनगणना को 'कृमी लेयर से निजात पाने' के लिए एक अवसर के रूप में देखते हैं।[21] सागरिका घोष का मत है कि जातिवाद के विषाणु से लड़ने के लिए जातियों के बारे में जानना और समझना आवश्यक ह। वह लिखती हैं कि "वर्ष 1947 में संविधान निर्माताओं ने प्रगतिशील सोच के साथ जातिगत भेदभाव खत्म करना चाहा था, पर पहचान के तौर पर वे जाति को खत्म नहीं कर सके। जब तक जाति के बारे में ठीक से समझ नहीं जाते, तब तक न तो उससे लड़ सकते हैं और न ही जाति विरोधी मानसिकता तैयार कर सकते हैं।"[22] अन्तरादेव सेन भी लगभग इसी तर्क के आधार पर जाति का जनगणना में समावेश चाहते हैं। उनके अनुसार "जाति के सम्बंध में वास्तविकता और सही आंकड़ों का पाना न्याय एवं स्वतंत्रता के संदर्भ में सहायक होगा।"[23] कंचना चन्द्रा का भी यही मत है। उनके अनुसार जाति का विश्लेषण विषमता की मूल समस्या से निपटने में सहायक होगा।[24] चन्द्रा का मानना है कि पहचान का दायरा जितना सिमटा रहेगा समाज में विभाजनकारी प्रवृत्ति उतनी अधिक होगी और जाति, उपजाति जैसी हजारों पहचानों को उभारकर इस विभाजक प्रवृत्ति को समाप्त कर सकते हैं।

---

[19] योगेन्द्र यादव, जातिगत जनगणना से कौन डरता है, अमर उजाला, 14 मई 2010

[20] आशुतोष, दुनिया के जातिवादी एक हों, दैनिक हिन्दुस्तान, 17 मई 2010

[21] नीलाभ मिश्र, आउटलुक, 24 मई 2010

[22] सागरिका घोष, जाति नहीं पाती, अमर उजाला, 25 मई 2010

[23] अन्तरादेव सेन, सेन्सस कंसेसस और कास्ट एसाइड, एशियन एज, 29 मई 2010

[24] कंचना चन्द्रा, अ वे ऑफ रीइनवेटिंग आइडेन्टिटी, द टाइम्स ऑफ इंडिया, 25 मई 2010

जाति आधारित जनगणना को आवश्यक समझने वाले ऐसे भी समाज विज्ञानी हैं, जो यह मानते हैं कि इसके पक्षधर राजनीतिकों की मंशा है कि इसका विरोध हो, जिससे वे अपनी राजनीति को और भी पुष्ट कर सकें।[25] प्रो. अनिल ठाकुर का मानना है कि जातिवादी ताकतें चाहती हैं कि इसका विरोध हो जिससे उन्हें जनगणना के राजनीतिक इस्तेमाल का अवसर मिल सके। सतोश देशपांडे और मैरी इ जॉन जाति को जनगणना में शामिल करना सकारात्मक कदम उठाए जाने के लिए आवश्यक मानते हैं। उनके शब्दों में, "हमारी केन्द्रीय अवधारणा यह है कि जातियों की गिनती नहीं करना स्वतंत्र भारत की बड़ी गलतियों में से एक है।" वे भारतीय राज्य की और मुख्यधारा की राजनीति को 'जाति के प्रति अंधापन (उपेक्षा) का भाव' (Caste Blindness) से ग्रस्त मानते हैं। वे लिखते हैं, "जाति आधारित जनगणना का नहीं हाना हमारी जातियों को समाप्त करने की महत्वाकांक्षा को कितनी क्षति पहुँचा चुकी है, इसका विवरण तैयार करना चाहिए।"[26] आनंद टेलटुम्बडे इससे असहमति जताते हुए कहते हैं कि राज्य ने जाति के प्रति आँख बंद (Caste Blind) नहीं रखा है। उनके अनुसार, "जाति की जनगणना लोगां के लिए कभी लाभदायक नहीं होगा, यह केवल शासक वर्गों का हित साधेगा।"[27]

जाति आधारित जनगणना का विरोध जिन तर्कों के आधार पर मीडिया की बहस में किया गया है, उनमें प्रमुख हैं: (क) यह औपनिवेशिक रणनीति 'बांटो एवं राज करो' के सिद्धांत को अपनाने जैसा होगा। सी.पी. भांवरी ने लिखा है कि "राजनीतिक दलों द्वारा समाज के जातिवादीकरण की प्रक्रिया बेरोकटोक चलायी जा रही है। और ऐसे में जाति आधारित जनगणना का निर्णय समतावादी विचार पर कुल्हाड़ी का अंतिम प्रहार की तरह होगा। वे औपनिवेशवादी राजनीति को घरेलू राजनोति की संकीर्णता से मिश्रित कर (देश पर) थोपना चाहते हैं।"[28] दूसरा तर्क दिया जाता है कि यह संविधान की भावना एवं संविधान निर्माताओं की सोच का खंडन करना होगा। जाति और वर्ग को समानार्थक मानना समकालीन युग में

---

[25] प्रो. अनिल ठाकुर, ब्रेन स्टार्मिंग सेशन, भा.नी.प्र.

[26] सतीश देशपांडे और मैरी इ जॉन, द पॉलिटिक्स ऑफ नॉट काउंटिंग कास्ट, इकानॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 19 जून 2010, पृ. 39-42

[27] आनंद टेलटुम्बडे, काउंटिंग कास्ट: एडवांटेज द रूलिंग क्लास, द इकानॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 10 जुलाई 2010, पृ.11

[28] सी.पी. भांवरी, कास्ट सेंसस एंड इट्स इम्प्लिकेशंस, द पायनियर, 26 जून 2010

एक घोर सामान्यीकरण ही नहीं, यथास्थितिवाद का बनाए रखने के कुचक्र की तरह है। जगमोहन तो यहां तक कहते हैं कि "जाति को संविधान से समाप्त कर देना चाहिए और कल्याणकारी कार्यों का आधार जाति नहीं होना चाहिए।"[29] वेद प्रताप वैदिक ने जाति आधारित जनगणना को भारतीयता एवं स्वस्थ लोकतांत्रिक प्रक्रिया का शत्रु माना है।[30]

इस मांग के पीछे जातीय ध्रुवीकरण एवं 'कोटा' की राजनीति की भी आशंका जतायी जा रही है।[31] बरखा दत्त ने जाति आधारित जनगणना को इसी प्रकार की राजनीति का एक उपकरण माना है। उनके अनुसार, "जाति को जनगणना में सम्मिलित करने का अर्थ होगा यह मान लेना कि आधुनिक भारत में नीतियों का निर्धारण जातियों के आधार पर होता रहेगा।" उनके अनुसार मूल समस्या यह है कि "जाति आधारित राजनीति आरक्षण पाने का एक शॉर्ट-कट रास्ता बन जाता है और आरक्षण राज्य के लिए गरीबों के प्रति जिम्मेदारी से मुंह मोड़ने का एक सुलभ बहाना।"[32] वह सवाल खड़ा करती हैं कि "अगर देश की 70 प्रतिशत आबादी अपने आपको ओ.बी.सी. घोषित कर देगी तब सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित आरक्षण की पचास प्रतिशत ऊपरी सीमा का क्या होगा?"[33]

लेकिन जाति आधारित जनगणना के पक्षधर योगेन्द्र यादव ऐसे तर्क से सहमत नहीं हैं। वे मानते हैं कि ऐसी जनगणना से हमें बहुत कुछ प्राप्त होगा। इससे हम "सकारात्मक कदम हेतु नीतियों को मजबूत और तथ्यात्मक आधार तो प्रदान कर ही पायेंगे, साथ ही बहुत से समुदायों की संख्या एवं पिछड़ेपन की अंतहीन बहस को भी विराम दे पायेंगे। ओ.बी.सी. की गिनती न सिर्फ संख्यात्मक विवाद को समाप्त करेगो, बल्कि इन समुदायों की सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक वस्तुस्थिति की भी जानकारी हासिल हो पायेगी।"[34]

ऐसे तर्कों के पीछे यह मान्यता है कि भारतीय राज्य जातिगत दुर्भावना एवं विशिष्ट जाति वर्गों के आधिपत्य में काम करता रहा है। प्रश्न उठता है कि क्या विकास का गैर-जातीय, गैर-सांप्रदायिक और पंथनिरपेक्ष रास्ते निष्प्रभावी हो चुके हैं? सामाजिक-आर्थिक

---

29 प्लेयिंग विद फायर, भाग II , एशियन एज, 26 जून 2010

30 वेद प्रताप वैदिक, जातिवार जनगणना के विरुद्ध, जनसत्ता, 27 मई 2010

31 इन्द्रजीत हाजरा, काउंटिंग बैकवर्ड्स, हिन्दुस्तान टाइम्स, 27 मई 2010

32 बरखा दत्त, इन रिवर्स गीयर, हिन्दुस्तान टाइम्स, 15 मई 2010

33 वही

34 योगेंद्र यादव, "व्हाइ कास्ट सूड बी काउंटेड?", द हिंदू, 15 मई 2010

पिछड़े वर्ग की पहचान के घोषित एवं सर्व-स्वीकृत मापदंडों के आधार पर काम करने की जगह जातीय दायरे में विकास की परिकल्पना कितनी पासंगिक एवं वैज्ञानिक है? यह जाति बोध एवं जातीय चेतना, दुराग्रह, पारस्परिक कटुता, अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा को बढ़ाने का काम करेगा। सामाजिक-आर्थिक मोर्चे पर व्यवस्था की विफलता आज भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट हो रही है। हासिये पर जो लोग हैं, उन्हें संकीर्ण सोच के द्वारा राजनीतिक स्वार्थ के लिए गुमराह करना आसान हो गया है। के. सुब्रह्मण्यम ने स्पष्ट शब्दों में जाति आधारित जनगणना को अस्वीकार करते हुए लिखा है कि "जो राजनीतिज्ञ जाति आधारित जनगणना की मांग कर रहे हैं, उन्हें परंपरागत रूप से वंचितों के हितों एवं सम्मान का तनिक भी ख्याल नहीं है। वे उनको सिर्फ वोट बैंक के रूप में संगठित करना चाहते हैं। जातीय आंकड़ा उनके हाथों में एक मजबूत उपकरण की तरह होगा, जो लोकतांत्रिक मूल्यों पर प्रत्यक्ष रूप से आघात होगा।"[35] वे मानते हैं कि "अंततः भारतीय राज्य को सामाजिक, आर्थिक आधार पर ही सकारात्मक कदम उठाते हुए कार्यक्रम बनाना होगा जो शिक्षा एवं रोजगार में जाति आधारित आरक्षण को समाप्त कर देगा।"[36] जाति आधारित जनगणना के पीछे 'पहचान की राजनीति' को प्रबल बनाने की मंशा है।

'पहचान आधारित राजनीति' पश्चिम से आयातित है। पश्चिम का यह मॉडल भारत पर थोपना अनुचित ही नहीं, नकारात्मक प्रभाव डालने वाला सिद्ध होगा। मीडिया में जनगणना पर बहस में 'पहचान की राजनीति' के नकारात्मक पक्ष पर भी थोड़ी-बहुत रोशनी डाली गयी है। धर्म (संप्रदाय) को राज्य के सामाजिक दर्शन एवं नीतियों के निर्माण का आधार बनाने के दुष्परिणामों पर दो विरोधी मत सामने आये हैं। पूर्व न्यायाधीश राजिन्दर सच्चर का मानना है कि "जाति विभाजनकारी है, जबकि धर्म और लिंग पहचान के मानक हैं। अतः वे अपने आपमें विभाजनकारी नहीं हैं। इसमें संदेह नहीं है कि निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा सांप्रदायिक भेद पैदा किया जाता है, परंतु यह इस बात के औचित्य को नहीं स्थापित करता है कि धर्म को जाति के समान मान लिया जाये।"[37]

---

35 के. सुब्रह्मण्यम, इन्ट्रोगेटिंग द कास्ट सेन्सस, द इंडियन एक्सप्रेस, 12 मई 2010

36 वही

37 राजिन्दर सच्चर, कास्ट इन सेंसस 2011, द ट्रिब्यून, 26 मई 2011

मुस्लिमों के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं भौगोलिक वितरण जानने एवं उसके संदर्भ में अनुशंसा करने के लिए राजिन्दर सच्चर की अध्यक्षता में उच्चस्तरीय (2005 में) कमेटी बनी थी, जिसे सच्चर कमेटी के नाम से जाना गया। इसने 2001 की जनगणना से प्राप्त आंकड़ों का इस्तेमाल कर पंथ के आधार पर शिक्षा एवं रोजगार में जनसंख्या के अनुपात में 'सकारात्मक कार्यक्रमों' को लागू करने की अनुशंसा की। प्रो. महेन्द्र कुमार प्रेमी इस प्रकार की अनुशंसाओं को पंथनिरपेक्ष राजनीति के प्रतिकूल मानते हैं।[38] इस कमेटी का तर्क था कि मुस्लिमों का उसकी जनसंख्या के अनुपात में शिक्षा एवं रोजगार में प्रतिनिधित्व नहीं है। पहचान आधारित राजनीति एवं इसके आधार पर राज्य द्वारा नीतियों का निर्माण संक्रमण की तरह होता है, विशेषकर तब जब संसाधनों, रोजगार और शैक्षिक अवसरों की कमी हो और लोगों में लाभ के अवसरों का अन्यायपूर्ण वितरण भी हो। भारत में ये दोनों ही बातें सुरसा की तरह मुंह फैलाए खड़ी हैं। ऐसी स्थिति में जाति आधारित जनगणना के बाद अनेक जातियों एवं उपजातियों का दावा होगा कि जनसंख्या के आधार पर उनका प्रतिनिधित्व शिक्षा, रोजगार एवं राजनीति में नहीं है। इस तरह पूरी व्यवस्था का पहचान केन्द्रित बनने का खतरा पैदा हो जाएगा। शरद यादव ने सच्चर के सैद्धांतिक दावे का प्रतिवाद करते हुए लिखा है कि 1951 में जाति आधारित जनगणना को बंद करना एक गलती थी। उनके अनुसार धर्म विभाजनकारी है, न कि जाति। वे लिखते हैं, "यह कहा जाता है कि जातिगत जनगणना को इसलिए बंद कर दिया गया कि यह विभाजनकारी है। यह एक अजीब तर्क है। भारत का विभाजन धर्म के कारण हुआ न कि जाति के कारण, लेकिन धर्म (के आधार पर जनगणना) चलता रहा।" वे कहते हैं कि 'दोषी धर्म था और सजा जाति को मिली'।[39] हरि नारके भी धर्म को पहचान का मानक बनाने को विभाजनकारी मानते हैं। उनके अनुसार बिना किसी जनगणना के जाति हजारों वर्षों से बनी हुई है और चल रही है, जबकि "140 वर्षों से धर्म आधारित जनगणना हो रही है। भारत का विभाजन धर्म के आधार पर हुआ, न कि जाति के आधार पर।"[40]

---

[38] प्रतिष्ठान के साथ बातचीत

[39] शरद यादव, कनफ्रंटिंग कास्ट, डिमान्डिंग सेन्सस, द इंडियन एक्सप्रेस, 14 मई 2010

[40] हरि नारके, कास्ट इज द इशू, द हिन्दू, 27 जून 2010

यह सच है कि जातिवादी सोच एवं विमर्श राष्ट्रीयता के विकास को निश्चित रूप से शिथिल करता है, परंतु यह न तो कभी राष्ट्रोयता को खंडित करने का कारण रहा है, न ही इसकी कल्पना की जा सकती है। जाति आधारित जनगणना स्वस्थ सामाजिक जीवन, राजनीतिक प्रक्रिया और लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास में अवरोधक सिद्ध होगो।

अधिकांश समाचार-पत्रों ने भी जातिगत जनगणना को अनुचित माना है।[41] कुलदीप नैयर ने जाति आधारित जनगणना को 'स्वतंत्रता आंदोलन के सिद्धांतों के प्रतिकूल' मानते हुए जातीय पहचान स्थापित करने के किसी भी प्रयास को 'असंवैधानिक' माना है। जाति का सार्वजनिक जीवन में पयोग समाज की प्रगति में बाधक है। नैयर लिखते हैं कि "जातिगत आधार पर जनगणना समेत जाति पहचान को पुन: स्थापित करने संबंधी कोई भी कार्रवाई असंवैधानिक है।"[42] इसी प्रकार संजय गुप्त का मानना है कि "ऐसी जनगणना के आँकड़ों का शैक्षिक एवं समाजशास्त्रीय उपयोग से कहीं अधिक राजनीतिक स्वार्थ के लिए दुरुपयोग होने का जोखिम है।"[43] समाज विज्ञानी प्रताप भानु मेहता का मानना है कि यदि जाति को जनगणना में सम्मिलित किया गया तो आधुनिक भारत जिन मूल्यों को लेकर चल रहा है, सबका अवमूल्यन हो जायेगा। वे लिखते हैं कि "जाति को जनगणना में शामिल करने की बात और कुछ नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की आड़ में ताकत आजमाइश है, वोट भारतीय समाज का वैचारिक प्रदर्शन है और गरीबों के प्रति रुझान की आड़ में एक क्षुद्र राजनीतिक व्यवहार है।" पहचान आधारित राजनीति को नकारते हुए मेहता कहते हैं कि कमजोर लोगों के सशक्तीकरण के लिए शिक्षा, संसाधन, भोजन की सुरक्षा एवं राजनीतिक भागीदारी जैसे अहम प्रश्न भारतीय राज्य के सामने हैं। जाति आधारित जनगणना इन आवश्यकताओं में से किसी का निदान नहीं है। न्याय की अवधारणा बुनियादी जरूरतों को सार्वभौमिक तरीके से देखने में है। उनके अनुसार "जाति आधारित जनगणना अंततः स्व-विनाशकारी साबित होगी। जाति आधारित राजनीति ने हमारे 'स्व' को कमजोर बना दिया है। हम एक-दूसरे को संदेह

[41] उदाहरणार्थ 'द हिंदू' ने भो अपने 7 मई, 2010 के संपादकीय में यह उल्लेख किया है कि "इसको (जनगणना को) जातियों के आँकड़े एकत्र करने का माध्यम नहीं बनाया जाना चाहिए।"

[42] कुलदीप नैयर, लोकतंत्र का अर्थ है जातिविहीन समाज, पंजाब केसरी, 19 मई 2010

[43] संजय गुप्त, जातियों की गिनती के खतरे, दैनिक जागरण, 30 मई 2010

से देखते हैं। ....जाति आधारित जनगणना की मांग इस बात स प्रेरित है कि जाति ही हर चीज को वैधानिकता देने में सक्षम है।"[44]

इस प्रकार जाति आधारित जनगणना पर यहाँ तीन अलग-अलग प्रकार के दृष्टिकोण सामने आये हैं। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि तीनों पक्षों के प्रायः सभी बुद्धिजीवियों ने जातिविहीन समाज के लक्ष्य को नहीं नकारा है। तीनों ही जनगणना को जातिविहीन समाज के निर्माण का उपक्रम मानते हैं। जाति आधारित जनगणना के समर्थन में दो अलग प्रकार की वैचारिक धारायें हैं। दोनों ही जनगणना को जातिवादी व्यवस्था एवं विषमता समाप्त करने के लिए उपयुक्त उपकरण मान रहे हैं। परन्तु जातिगत जनगणना नहीं करने की सहमति को तोड़ने के लिए उनके पास ठोस तर्क नहीं है। सिर्फ संख्या जानने की बात पर बल दिया जा रहा है। इस तर्क में भी समाजशास्त्रीय पक्ष पूरी तरह से अनुपस्थित है। जाति व्यवस्था की तुलना पश्चिम की नस्लवादी राजनीति और उसका वहाँ की जनगणना पर प्रभाव से करना अपनी अस्मिता के साथ छल करने जैसा है। जनगणना का सकारात्मक योगदान तभी हो सकता है, जब यह जातिविहीन समाज के निर्माण में ओछी राजनीति, सत्तावादी सोच एवं संकीर्णताओं के बोझ से मुक्त हो और इस पर सामाजिक-आर्थिक पक्ष हावी हो। वस्तुतः पहचान आधारित संस्थाओं, राजनीतिक-सामाजिक विमर्शों एवं नीति निर्माण की प्रक्रिया को अपवाद रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए। इसका सामान्यीकरण करना इसे प्रोत्साहन देने जैसा होगा एवं इससे लोकतंत्र, पंथनिरपेक्षता एवं उर्ध्वगामी सामाजिक विकास तीनों को क्षति पहुँचेगी।

जाति की जटिलता

जाति को जनगणना में शामिल करने के पीछे जो तर्क हैं, उन सब का निष्कर्ष पिछडो जातियों की वास्तविक संख्या को जानना है, जिससे इनके कल्याण की योजना को ठोसपूर्ण ढंग से लागू किया जा सके। संविधान के अनुच्छेद 340 में पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए राज्य को कल्याणकारी कदम उठाने का अधिकार दिया गया है। 'वर्ग' शब्द का प्रयोग करने के पीछे उद्देश्य है कि 'जाति' को सार्वजनिक एवं राजनीतिक विमर्श से अलग रखा जाये। यह सत्य होते हुए भी कि अनेक पिछड़ी जातियाँ ही मुख्य रूप से पिछड़े वर्ग में

[44] प्रताप भानु मेहता, माई कास्ट एंड आई, द इंडियन एक्सप्रेस, 12 मई 2010

आती हैं, जाति की परिधि को वैधानिकता नहीं दी गई। केन्द्रीय स्थान एवं सम्मान दोनों से वंचित इस प्रकार के जाति विमर्श को संवैधानिक तौर पर पृथक् रखा गया है।

पिछड़े वर्ग को चिह्नित करने के लिए समय-समय पर अलग-अलग मापदंड तय किये जाते रहे हैं और उन पर मोटे तौर पर सहमति भी रही है। केन्द्रोय एवं राज्य स्तरों पर पिछड़ा वर्ग आयोगों द्वारा यह कार्य होता रहा है।[45]

इस संबंध में आशा दास ने सवाल खड़ा किया है कि "अत्यंत सतही बातों के आधार पर दूरगामी प्रभाव वाले निर्णय को कैसे स्वीकार किया जा सकता है?"[46] हम जनगणना को क्यों पिछड़ी जातियों की गिनती के लिए माध्यम बनाना चाहते हैं, जबकि यह काम बखूबी पिछड़ा वर्ग आयोग कर सकता है आर करता रहा है? पिछड़ेपन या विकास एक सार्वभौम एवं स्थिर अवधारणा नहीं है। यह एक तुलनात्मक स्थिति है, स्थान एवं संदर्भयुक्त व्याख्या है और सतत परिवर्तनशील प्रक्रिया है। अशोक मल्लिक इस संबंध में लिखते हैं कि अगर 'क' जाति यदि 'च' राज्य में पिछड़ा वर्ग में है, तो जरूरी नहीं है कि 'ट' राज्य में भी वह पिछड़ा वर्ग में ही हो। उनके अनुसार "जनगणना में स्वेच्छापूर्वक जानकारियाँ दी जाती हैं, जिनका प्रतिकार नहीं हो सकता है।"[47] एक मौलिक प्रश्न यह है कि किस प्रकार जनगणना से प्राप्त जातियों के आँकड़े कल्याणकारी कदम उठाने में राज्य का आधार बनंग? मुस्लिमों ने अपनी जनसंख्या के अनुपात में संसद से शिक्षण संस्थाओं तक अपनी उपस्थिति का आकलन कर इसे 'भेदभाव' एवं 'पिछड़ेपन' का कारण मान लिया है। जातिगत जनगणना के पश्चात अनेक ऐसे जातीय, उपजातीय समूहों का वर्ग उभर सकता है, जो पहचान के आधार पर लोकतांत्रिक पंथनिरपेक्ष व्यवस्था में संक्रामक एवं दोषपूर्ण दोनों साबित हो सकता है।

ऐसे वर्ग उपरोक्त आधार पर शिक्षा, रोजगार, विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका, सेना, पुलिस, पत्रकारिता आदि में अपनी उपस्थिति का आकलन कर राज्य से अपनी जनसंख्या के अनपात में अपने प्रतिनिधित्व की मांग करेंगे। उदाहरण के लिए 'अ' जाति की जनसंख्या 3 प्रतिशत हुई और उसका प्रतिनिधित्व उपरोक्त संस्थाओं में 0.5 प्रतिशत है, तो स्वभावतः यह ऐसी मानसिकता को जन्म देगा जो परस्पर पहचान आधारित नकारात्मक

---

45 ब्रेन स्टार्मिंग सेशन, भा.नी.प्र.

46 देखें परिशिष्ट-I, ब्रेन स्टार्मिंग सेशन

47 अशोक मल्लिक, कास्ट इन ड्रीम्स, द एशियन एज, 20 मई 2010

प्रतिस्पर्द्धा, प्रतिद्वंद्विता एवं प्रतिशोध को बढ़ाने का काम करेगा। सभी आरक्षण की परिधि में आने के लिए विखंडित राजनीति का सहारा लेने का प्रयास करेंगे।

आशा दास का मानना है कि "राज्य ने पिछड़ेपन को सुविधाओं का लाभ देकर इसकी परिधि में आने के लिए समुदायों एवं जातियों को प्रोत्साहित किया है।"[48]

निम्नलिखित तर्कों के आधार पर जातिगत जनगणना के दुष्परिणाम पर प्रकाश डाला जा सकता है :

राजनीतिक नैतिकता

स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में जातिविहीन समाज की कल्पना को व्यवहार में लागू करने का प्रयास होता रहा। संविधान निर्माताओं ने उन सभी सावधानियों एवं चुनौतियों को सामने रखकर समानतामूलक समाज के निर्माण की प्रक्रिया को शुरू किया। इसीलिए स्वतंत्र भारत की पहली जनगणना में जाति का समावेश नहीं किया गया। अब उसे पलटना सामाजिक विकास के तात्कालिक लाभ के लिए राजनीतिक नैतिकता को स्थायी रूप से हवन कुंड में डाल देने जैसा होगा। क्या यह राजनीतिक नैतिकता का ह्रास नहीं माना जायेगा?

यथार्थवाद

एक बार इस तरह की नीति को स्वीकार कर लिया गया, तो यह सिर्फ बौद्धिक विमर्श तक सीमित नहीं रह जाएगा, बल्कि यह समाज पर क्षैतिज प्रभाव (Horizontal Effect) भी डालगा। इससे जातियों के बीच प्रतिस्पर्द्धा एवं गलत बयानी का खतरा बढ़ेगा। जातियों के मृत संगठन एवं उपेक्षित नेतृत्व जातीय अस्मिता के नाम पर पुनर्जीवित हो जायेंगे। जनगणना अधिकारी किसी व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारियों की न तो जाँच कर सकता है, न ही उसे सार्वजनिक कर सकता है। इस तरह सही आंकड प्राप्त करने का लक्ष्य जातीय प्रतिस्पर्द्धा में अधूरा सपना बनकर रह जायेगा। जाति आधारित जनगणना के समर्थक योगेन्द्र यादव भी मानते हैं कि "आधिकारिक गिनती से जातिगत पहचान पहले से कुछ ज्यादा

---

48 ब्रेन स्टार्मिंग सेशन, भा.नी.प्र.

उभरेगी।"[49] तो कुलदीप नैयर जातिगत जनगणना को "संविधान के बुनियादी ढाँचे की अवहेलना मानते हैं।"[50]

तकनीकी कारण

एक और पक्ष है जिस पर ध्यान देना चाहिए। जनगणना को जितना पेंचीदा बनाया जायेगा, सही आंकड़े प्राप्त करना उतना ही कठिन होगा। हाल ही में समाचार-पत्रों में जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई हैं, वे जनगणना की प्रक्रिया में त्रुटियों और उसके दुष्परिणामों की ओर इंगित करती हैं। एक स्थान पर जनगणना अधिकारियों (शिक्षकों) ने स्कूली छात्रों के द्वारा जानकारियों/आंकड़ों का संग्रह कराया। वे घर-घर जाकर फार्म भरवाते पाये गये।[51]

एक दूसरी रिपोर्ट के अनुसार हैदराबाद में जनगणना अधिकारी ने आवासोय परिसर के सुरक्षाकर्मी के पास घरों के सर्वे का फार्म छोड़ दिया और उससे ही फार्म भरवा लेने का अनुरोध किया।[52]

जाति जैसे संवेदनशील मुद्दों को इस प्रकार के आंकड़े संग्रह करने के तौर-तरीकों पर छोड़ना क्या उचित होगा?

जाति की अवधारणा और परिधि एक गतिशील एवं परिवर्तनशील चक्र है। साथ ही यह सामाजिक-राजनीतिक पर्यावरण से प्रभावित होता है। बीसवीं सदी के आरंभ काल में जाति बोध एवं जाति की अवधारणा इतना तरल एवं अस्थिर थी कि प्रत्येक दस वर्ष में जाति का नाम बदल जाता था।[53] इसे जातीय गतिशीलता भी कहा गया है।

1921 एवं 1931 की जनगणना को इसके उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। अनेक जातियों ने जो 1921 की जनगणना में अपने आपको क्षत्रिय घोषित किया था, वे 1931 की जनगणना में ब्राह्मण बन गये।

---

[49] योगेन्द्र यादव, जातिगत जनगणना से कौन डरता है, अमर उजाला, 14 मई 2010

[50] जातिवादी राजनीति को बढ़ावा, कुलदीप नैयर, दैनिक जागरण, 19 मई 2010

[51] हाइस्कूल ब्वायज हायर्ड ऐज सेन्सस आफिसर्स, द टाइम्स ऑफ इंडिया, अहमदाबाद, 16 मई 2010

[52] प्राक्सीज प्ले सेन्सस एनुमरेट्स, टाइम्स ऑफ इंडिया, हैदराबाद, 19 मई 2010

[46] अरुण शौरी, फालिंग ओवर बैकवर्ड? पृ. 40, नई दिल्ली (2006)

'सोनार' जाति ने 1921 में अपने को 'क्षत्रिय राजपूत' घोषित किया लेकिन दस साल बाद 1931 की जनगणना में वे 'ब्राह्मण' और 'वैश्य' बन गये। भारत में पिछले छः दशकों से चल रही जनतांत्रिक प्रक्रिया में जातिविहीनता के प्रति हर स्तर पर आग्रह, वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप प्रभावित सामाजिक संरचना, शिक्षा का प्रसार, शहरीकरण जैसे कारकों ने जातियों को परंपरागत रूप से स्थिर या गोलबंद नहीं रहने दिया है। इस सच को स्वीकार किया जाना चाहिए कि जातियों के बीच कटुता, सामंती भेदभाव और बड़े-छोटे के बोध में लगातार कमी आयी है। सामाजिक-राजनीतिक पर्यावरण का ही प्रभाव था कि 1871 की जनगणना में 'क्षत्रिय' बनने के दावों में अतिशय वृद्धि हुई थी। यह सामाजिक सोपान में अपने आपको ऊपर रखने की चाहत थी। उदाहरणस्वरूप "यादव, कुर्मी, दुसाध, कहार समुदाय के लोग अपने आपको 'क्षत्रिय' घोषित करने लगे थे।.... श्रेष्ठ जाति की सूची में शामिल होने के लिए आवेदन पर आवेदन दिए जाने लगे।"[54]

श्रीकांत जो जाति गणना का समर्थन करते हैं, लिखते हैं कि "जातियाँ भारतीय समाज में जड़ श्रेणियां नहीं रही हैं। नई-नई जातियाँ एवं उपजातियाँ बनती रहीं और पुरानी जाति के सामाजिक सोपान की स्थिति बदलती रही।"[55]

सामाजिक सोपान श्रेणी की अवधारणा सामंतवाद पर आधारित है। इसे समाप्त करने के लिए सामाजिक-राजनीतिक स्तरों पर सहमति बनी है। कैसे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पर्यावरण जाति समुदाय को प्रभावित करती रही है, इस पर श्रीकांत लिखते हैं कि जहाँ पहले "बिहार और उत्तर प्रदेश में जनेऊ पहनन का आंदोलन चला, वहीं आज जनेऊ की बात नहीं होती है। आज बात होती है अमुक जाति को निम्न श्रेणी में शामिल करने की। 2011 की जनगणना में कुछ जाति यदि यह कहने लगे कि वे अमुक जाति में नहीं हैं, उन्हें तो शूद्र में शुमार किया जाना चाहिए, तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। आखिर आरक्षण का लाभ भी तो है।"[56] इस प्रकार की परिस्थितियों से बचने के लिए लोकतांत्रिक मार्ग का अनुसरण करने के साथ-साथ 'संकीर्ण सोच' से मिलने वाले तात्कालिक राजनीतिक-आर्थिक लाभों से ऊपर उठने की आवश्यकता है। इन तथ्यों के आलोक में प्रो. आशीष बोस का

---

[54] श्रीकांत, जनगणना एवं जाति की जटिलता, हिन्दुस्तान, 22 मई 2010

[55] वही

[56] वही

मानना है कि जनगणना का लक्ष्य तटस्थ आँकड़ों का संकलन करना होता है। यह मुख्य रूप से विकास के आयामों जैसे पीने का पानी, बिजली, सड़क, सफाई, शिक्षा के अवसर और स्वास्थ्य आदि की प्राथमिक सूचना देता है। वे पूछते हैं, "क्या हमें जाति केन्द्रित होने के बजाय लोक केन्द्रित नहीं होना चाहिए?"[57]

राजनीतिक विज्ञानी प्रो. सतीश झा ने इस बात पर बल दिया कि "जनगणना के पीछे का दृष्टिकोण स्वतंत्र भारत में औपनिवेशिक काल के दृष्टिकोण से मौलिक रूप से अलग है। औपनिवेशिक शासन द्वारा 'शासितों' की जनगणना साम्राज्यवादो दृष्टिकोण से की जाती थी, जबकि स्वतंत्रता के बाद नागरिकों को केन्द्र में रखकर जनगणना की जाती है। सामाजिक विरोधाभासों को उभारने की प्रक्रिया समाप्त हो जानी चाहिए।"[58]

प्रो. अमिताभ कुंडु ने पिछड़ी जातियों के आँकड़े एकत्रित करने के लिए दूसरे वैकल्पिक माध्यमों के उपयोग पर बल दिया है। उनके अनुसार "जनगणना को जातिगत आंकड़ा इकट्ठा करने का माध्यम नहीं बनाया जाना चाहिए। पिछड़ी/अति पिछड़ी जातियों के आंकड़ों को प्राप्त करने के लिए और दूसरे तरीकों का उपयोग किया जाना चाहिए।"[59]

प्रो. दीपांकर गुप्ता का भी मानना है कि नागरिकों के लिए प्राथमिकता का विषय विकास, आर्थिक वृद्धि, प्रदूषण की समस्या है न कि जाति। उनके अनुसार, "हमें यह सोचने की जरूरत है कि हम एक हैं, जिससे हमारे अस्तित्व का आधार समान बातों में निहित हो, न कि विभाजनकारी कारकों में।"[60] गुप्ता का मानना है कि नागरिकता की अवधारणा लोकतंत्र की एक अमूल्य निधि है, जो लोगों को विभाजक तत्वों से दूर करती है। उनके शब्दों में, "लोकतंत्र में हमेशा एक जाति दूसरी जाति के विरुद्ध, एक भाषा दूसरी भाषा के विरुद्ध तथा एक धर्म दूसरे धर्म के विरुद्ध होता है। चूंकि नागरिकता इन कारकों के प्रति नेत्रहीनता (तटस्थता) की स्थिति रखता है अत: हमारे राजनीतिज्ञ इसे (नागरिकता को) ही बाधक मानते हैं।"[61]

---

57 वही, ब्रेन स्टार्मिंग सेशन, भा.नी.प्र.

58 श्री सतीश झा दिल्ली विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। प्रतिष्ठान के शोधार्थियों के साथ 4 जून 2010 को हुए विचार-मंथन पर आधारित

59 अमिताभ कुंडु, देखें परिशिष्ट- III

60 प्रो. दोपांकर गुप्ता, कास्ट एगन्स्ट सिटिजंस, इंडिया टुडे, 24 मई 2010

61 वही

प्रो. गुप्ता के अनुसार जनगणना नागरिकों की जरूरतों को प्रतिबिम्बित करता है। इसलिए उनका मानना है कि जनगणना एक ऐसा दस्तावेज है, जो भविष्य को रेखांकित करता है, न कि अतीत के पूर्वाग्रहों और संकीर्ण हितों को। वे कहते हैं कि "अगर जाति को जनगणना का आधार बना दिया जाता है, तो भविष्य में बनने वाली सभी सामाजिक नीतियाँ जाति आधारित हो जायेंगी, न कि नागरिकता आधारित।"[62]

जाति के अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता है। कम विकसित, पिछड़ी और अति पिछड़ी जातियों आदि के आधार पर राजनीति के पल्लवित और पुष्पित होने की प्रक्रिया अबाध गति से चली, जिसके कारण जातिवाद से मुक्ति पाने का अभियान कमजोर पड़ गया। जाति केंद्रित सोच एवं उसक अनुरूप गतिविधियों का संचालन लोकतंत्र एवं स्वस्थ सामाजिक विकास दोनों के मार्ग को बाधित करता रहा है। बैरिंगटन मूरे तो यहाँ तक मानते हैं कि जातियों का अस्तित्व गरीबों के संयुक्त संघर्ष को बाधित करता है। अतः गरीबी, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि, प्रदूषण, स्वच्छ पेयजल की समस्या एवं शिक्षा जैसे प्रश्नों पर सामाजिक-राजनीतिक पहल की आवश्यकता है। राज्य द्वारा पिछड़ों के हितों के लिए उठाये जाने वाले कदम एवं हस्तक्षेप का लक्ष्य समानतामूलक समाज की स्थापना का होना चाहिए। संविधान में इस हेतु स्पष्ट प्रावधान हैं। परंतु समाज एवं राज्य को उन सभी कदमों का उठाने से बचना चाहिए जो प्रगति को अवरुद्ध करता हो, उसे प्रतिगामी होने के लिए बाध्य करता हो और नागरिकता की अवधारणा को हाशिये पर ढकेलता हो। जनगणना एक महत्वपूर्ण और उपयोगी कार्य है। इसे तात्कालिक लाभ को ध्यान में रखकर उपजने वाली अवांछित मानसिकता से बचाना चाहिए ताकि यह 'हम भारत के लोग' को प्रतिबिम्बित करे। यही बात पहली जनगणना की रिपोर्ट में भी कही गयी थी।

---

[62] वही

अध्याय-दो

राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (रा.ज.र.)

2011 की जनगणना को दो चरणों मे पूरा किया जाएगा। इसके पहले चरण में जनगणना हेतु घरों को चिह्नित करने के साथ-साथ घर सम्बन्धी अनेक जानकारियाँ प्राप्त की जायेंगी, जबकि दूसरे चरण मे (फरवरी 2011 से) वास्तविक जनगणना होगी।

पहले चरण के साथ भारत सरकार राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर तैयार करने हेतु भी गहन जानकारियाँ इकट्‌ठा कर रही है। दोनों ही कार्यों का संचालन जनगणना अधिकारी ही कर रहे हैं। उनके पास दो प्रकार के फार्म होते हैं। पहले फार्म में घर से संबंधित जानकारियां की प्रश्नावली है। इसमें 35 प्रश्न समाहित किए गये हैं। इनमें से प्रमुख हैं-घर के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री, पीने के पानी की उपलब्धता, घर में शौचालय का होना, बिजली, रसोई गैस, वाहन, संचार के साधन यथा मोबाइल आदि से संबंधित जानकारियां हेतु प्रश्न हैं, जबकि दूसरे फार्म में राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर तैयार करने हेतु निम्नलिखित जिन 15 जानकारियां की प्रश्नावली दी गई है, वे निम्नलिखित हैं:

व्यक्ति का नाम, लिंग, जन्म तिथि, जन्म स्थान, वैवाहिक स्थिति, पिता का नाम, माँ का नाम, पति/ पत्नी का नाम, वर्तमान पता, वर्तमान पता पर रहने की अवधि, स्थायी पता, व्यवसाय, राष्ट्रीयता (स्वघोषित), शैक्षिक योग्यता, परिवार के मुखिया से सम्बंध।

दोनों ही सर्वेक्षण एवं जानकारियों का संग्रह दो अलग-अलग संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत किया जा रहा है। घरों को गणना हेतु सर्वे 1948 की जनगणना अधिनियम के अन्तर्गत एक संवैधानिक कार्य है, जो जानकारियों की गोपनीयता को सुनिश्चित करता है, जबकि रा.ज.र. के लिए सूचनाओं का एकत्रीकरण नागरिकता अधिनियम 1955 और नागरिकता कानून (नागरिकों का रजिस्ट्रेशन एवं विशिष्ट पहचान-पत्र कानून 2003) नियम के अन्तर्गत किया जा रहा है। इसमें प्राप्त विवरण की गोपनीयता सुनिश्चित नही है। यह सार्वजनिक रूप से जाँच एवं अवलोकन के लिए उपलब्ध होगा।

रा.ज.र. बनाने के पीछ सरकार की अवधारणा एवं मंशा क्या है, यह जानना आवश्यक है। भारत सरकार ने देश में रहने वाले सभी लोगों का एक रजिस्टर बनाने का निर्णय लिया है। उपरोक्त उल्लिखित 15 जानकारियों के आधार पर सभी लोगों को रजिस्टर में शामिल

किया जायेगा। यह भारत के सभी 'सामान्यतया निवासियों' (Usual Residents) का रजिस्टर हागा। आंकड़े इकट्ठे होने के बाद सार्वजनिक जाँच के लिए नाम सहित सभी जानकारियां की एक सूची जारी की जायेगी। लोगों को इसमें दर्ज त्रुटिपूर्ण जानकारियों को सुधारने का अवसर दिया जायेगा। फिर बायोमट्रिक (अंगलियों का निशान) लेने के बाद सभी 'सामान्यतया निवासियों' को एक विशिष्ट पहचान संख्या/ पत्र जारी किया जायेगा। सरकार की घोषित नीति के अनुसार इसका उपयोग कल्याणकारी एवं सुरक्षा दोनों ही उद्देश्यों से किया जा सकेगा।

रा.ज.र. के सम्बंध में राष्ट्रीय स्तर पर विमर्श तो दूर इसके बारे में यथेष्ट प्रचार भी नहीं किया गया। जनगणना के साथ इसे जोड़कर एक भम की स्थिति उत्पन्न की गयी है। इतने महत्वपूर्ण प्रश्न पर सरकारी एवं गैर–सरकारी स्तरों पर आलोचनात्मक विमर्श को दबा देना, सरकारी स्तर पर जल्दबाजी में इसे क्रियान्वित करना इसक प्रति अनेक प्रश्नों को अनुत्तरित तो छोड़ता ही है, आशंकाओं को भी जन्म देता है।

देश के सभी लोगों का आँकड़ा बैंक तैयार करना तो उचित है, परंतु नागरिकों एवं गैर–नागरिकों दोनों को एक ही प्रकार एवं प्रकृति का पहचान पत्र/ पहचान संख्या जारी करना न सिर्फ संवैधानिक रूप से गलत है, बल्कि राजनीतिक रूप से भी अनैतिक है। सरकार ने नागरिकों एवं गैर–नागरिकों तथा घुसपैठियों, अवैध रूप से रहने वाले निवासियों के बीच का अंतर समाप्त कर समान सुविधायें, समान कानूनी दर्जा और समान कल्याणकारी प्रश्रय देने का एक अदूरदर्शितापूर्ण निर्णय लिया है। 'सामान्यतया निवासी' की अवधारणा उनके हक में जाता है, जो भारत में अवैध रूप से रह रहे हैं।

सबसे आपत्तिजनक बात यह है कि रजिस्टर में जिन लोगों के नामों को सम्मिलित किया जा रहा है, उनकी राष्ट्रीयता के संबंध में सरकार द्वारा जाँच करने की न ता कोई मंशा है, न ही उस जाँच हेतु उसके पास कोई स्पष्ट और सटीक तरीका है। रा.ज.र. की प्रश्न संख्या 10 और 11 राष्ट्रीयता से संबंधित है। रजिस्टर पर व्यक्ति की स्वघोषित राष्ट्रीयता ही अंकित होगी। बड़ी संख्या में भारत में रह रहे बांग्लादेशी एवं पाकिस्तानी घुसपैठिए अपनी राष्ट्रीयता भारतोय घोषित कर रजिस्टर में नाम दर्ज कराकर अपनी नागरिकता की दावेदारी, जालसाजी से प्राप्त किए गए भारतीय नागरिकता के सबूतों को और भी पुष्ट कर पाएंगे। सरकार का यह तर्क हास्यास्पद है कि नामों की सूचो पर आपत्तियाँ आमंत्रित की जाएंगी। दिल्ली क लक्ष्मीनगर, पश्चिम बंगाल में माल्दा, असम के सीमांत जिलों व बिहार के

किशनगंज जैसे जिलों में 'वर्तमान पत' के आधार पर रह रहे लोगों के बारे में कौन और किस रूप में आपत्ति दर्ज कर पायेगा? घुसपैठिए संगठित गैंग की तरह हैं जिन्हें हर स्तर पर राजनीतिक संरक्षण प्राप्त है। इन पर जैसे ही पुलिस की कार्रवाई होती है, धर्म का प्रश्न उठा दिया जाता है।[63]

जनगणना अधिकारी को न तो अधिकार दिया गया है, न ही उसके लिए संभव है कि वह लोगों की राष्ट्रीयता के सम्बंध में वर्तमान या स्थायी पता सहित अन्य सूचनाओं की जांच-पड़ताल कर सके। रा.ज.र. सभी श्रेणी के निवासियों-वैध एवं अवैध नागरिकों और घुसपैठियों का समतलीकरण एवं सामान्यीकरण करने वाला एक वैधानिक दस्तावेज बन जायेगा। देश में करोड़ों घुसपैठिए हैं, जो कई विधान सभाओं, लोकसभाओं एवं स्थानीय निकायों के चुनाव परिणामों को न सिर्फ प्रभावित कर रहे हैं, बल्कि कई स्थानों पर निर्णायक की भूमिका में आ चुके हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि फर्जी प्रमाणपत्रों के आधार पर रह रहे लोगों को अपने अस्तित्व को वैधानिक एवं औचित्यपूर्ण बनाने का यह एक अपूर्व अवसर होगा।

यह बात ठीक है कि यह रजिस्टर नागरिक रजिस्टर से भिन्न है, परंतु इसे राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर कहना एवं स्वघोषित राष्ट्रीयता पर राज्य की मौन स्वीकृति देना इसे नागरिक रजिस्टर जैसा ही बना देता है। यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके आधार पर मिले पहचान पत्र/ क्रमांक संख्या का बहुआयामी उपयोग होगा। यह पत्र/संख्या वैधानिक एवं अन्य दृष्टि से इतना महत्वपूर्ण होगा कि नागरिक रजिस्टर इसके सामने बौना और बेकार की वस्तु प्रतीत होगा। आश्चर्य की बात है कि स्वघोषित राष्ट्रीयता का प्रतिवाद करने का काम राज्य लोगों पर छोड़ रहा है। उसने स्वयं को सत्यापन या प्रतिवाद के काम से मुक्त रखा है।

भारत सरकार के गृह मंत्रालय की स्थायी समिति (Standing Committee) ने भी इस आपत्ति को स्वीकार करते हुए जो टिप्पणी की है, वह शोचनीय है:

"समिति का यह सुविचारित मत है कि रा.ज.र. की घरेलू अनुसूची में उल्लिखित 'स्वघोषित राष्ट्रोयता' (सूचना देने वालों द्वारा) अवैध रूप से रह रहे लोगों को व्यावहारिक तौर पर नागरिकता प्रदान करने की क्षमता रखता है। समिति इस बात की अनुशंसा करती है कि राष्ट्रीयता सम्बन्धी कॉलम को सूची से हटाया जाये। इसमें दीर्घकाल में देश की अखंडता

---

[63] सतीश पेडणेकर, ब्रेन स्टार्मिंग सशन, भा.नी.प्र.

एवं सुरक्षा पर खतरा पैदा करने की संभावनायें विद्यमान हैं। इसलिए समिति का सुझाव है कि रा.ज.र. पर सर्वे कार्य को तत्काल स्थगित किया जाये।

रा.ज.र. एवं जनगणना दोनों की प्रकृति न सिर्फ भिन्न है, बल्कि प्राप्त जानकारियों को श्रेणी भी अलग-अलग है। जनगणना की जानकारियाँ 'गोपनीय' हैं, तो रा.ज.र. की जानकारी सार्वजनिक है। दुर्भाग्य से दोनों कार्यों को एक साथ संलग्न कर दिया गया है। इसके पीछे तर्क दिया गया है कि इससे समय और ऊर्जा की बचत होगी, जो कुछ हद तक तार्किक भी है। परंतु रा.ज.र. की महत्ता, इसके देश के सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं एवं नीतियों पर पड़ने वाले दीर्घकालीन प्रभाव और आन्तरिक सुरक्षा जैसे प्रश्नों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि रा.ज.र. का जाने-अनजाने में या तो अवमूल्यन हुआ है या सोची-समझी रणनीति के आधार पर जनगणना की आड़ में इस कार्य को अंजाम दिया जा रहा है। एक ही व्यक्ति गोपनीयता एवं सार्वजनिक करने योग्य दोनों ही प्रकार की जानकारियों का आंकड़ा इकट्ठा कर रहा है। यहाँ जनगणना में प्राप्त जानकारियों की गोपनीयता का पक्ष भी उपेक्षित हो रहा है। इसलिए गृह मंत्रालय की स्थायी समिति ने इस बात पर बल दिया है कि "गोपनीयता का उद्‌देश्य, लक्ष्य और प्रक्रिया दोनों ही चीजों (जनगणना और रा.ज.र.) में भिन्न है। अतः यह जरूरी हो जाता है कि दोनों कार्यों की पवित्रता बनाये रखने के लिए इसे एक-दूसरे से अलग रखा जाये। अतः समिति ने सुझाव दिया है कि जनगणना की प्रक्रिया को रा.ज.र. को तैयार करने की प्रक्रिया से अलग रखा जाये।"[64]

स्थायी समिति को इस अनुशंसा एवं स्पष्ट टिप्पणी को नजरअंदाज कर रा.ज.र. तैयार करने की प्रक्रिया को जनगणना के साथ चलाया जाना सरकार की मंशा पर एक बड़ा सवाल खड़ा करता है।

जनसंख्या का रजिस्टर बनाना राज्य के हित में तभी है, जब इसके लिए निम्नलिखित कुछ अहम बातों का ध्यान रखा जाए :

- इस दस्तावेज से 'राष्ट्रीयता' शब्द को हटाया जाना चाहिए और इसे 'जनसंख्या रजिस्टर' कहा जाना चाहिए। इससे इसकी अतिरिक्त वैधानिकता और महत्ता मिलने का खतरा समाप्त हो सकता है।

---

[64] भूपेंद्र यादव, ब्रेन स्टार्मिंग सेशन, भा.नी.प्र.

● इस सर्वे से प्राप्त आंकड़ों का सत्यापन, जाँच और पुष्टि के लिए पुलिस, सिविल एजेंसी, स्थानीय समुदायों और वरिष्ठ नागरिकों का संगठित सहयोग लेना चाहिए। इससे अवैध रूप से नागरिकता या भारतीय राष्ट्रीयता की आड़ में रह रहे घुसपैठियों, अवैध लोगों को चिह्नित कर उसको अलग से वर्गीकत किया जा सके। इससे नागरिकता का अवमूल्यन एवं नागरिकों एवं अवैध एवं अराष्ट्रीय लोगों क समतलीकरण का खतरा कम हो सकता है।

● जनगणना की प्रक्रिया से रा.ज.र. को अलग रखा जाना चाहिए। इससे दोनों का स्तर एवं प्रकृति अक्षुण्ण बना रहेगा।

रा.ज.र. के बारे में प्रचार माध्यमों, शिक्षण संस्थाओं एवं बुद्धिजीवियों के बीच बहस एवं विमर्श आयोजित कर इसकी उपयोगिता एवं गुणात्मकता को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर के प्रति समाज को जागरूक कर राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता और आंतरिक सुरक्षा पर उत्पन्न होने वाले निहित खतरे की ओर ध्यान खींचा जाना चाहिए। इस महत्वपूर्ण कार्य में शीघ्रता के भाव से भी सरकार को बचना चाहिए। लोकतंत्र मे सरकार द्वारा जनमत की उपेक्षा एवं अहम विषयों पर बिना जन-भागीदारी के निर्णय से अनेक आशंकाओं एवं आरोपों की उत्पत्ति होती है। ऐसा एक लोकतांत्रिक राज्य के लिए उचित भी नहीं है। रा.ज.र. के फार्म को भी सामान्यतया लोग जनगणना का ही अंग मानकर जानकारियाँ दे रहे हैं।[65] आज से दो हजार वर्ष पूर्व महान राजनोतिक विचारक अरस्त् ने रोम राज्य की नागरिकता के लिए कठोर शर्तों का प्रतिपादन किया था, तो आज भारतीय राज्य नागरिकता की अवधारणा को अनुचित रूप से महत्वहीन बनाने में लगा है। संभवतः इस क्रम में यह जानने की भी आवश्यकता ह कि आखिर किस वैचारिक तंत्र (Think Tank) ने किसी खास उद्देश्य से भारतीय राज्य को इस नीति हेतु प्रभावित किया है। भारत एक संयमी और उदारवादी प्रकृति (Soft State) का राज्य है, जो यथार्थतः अव्यावहारिक साबित हो रही है। रा.ज.र. पर उसकी नीति उसे एक कमजोर एवं भ्रमित राज्य के रूप में रूपांतरित कर रही है। राज्य इस बात को भी सुनिश्चित नहीं कर पा रहा है कि वह नक्सल प्रभावित

---

[65] मा. गो. वैद्य, जाति निहाय जनगणना : सामाजिक अभियानाची गरज. तरुण भारत (मराठी), 27 जून 2010, पृ. 4

या उत्तर-पूर्व या कश्मीर के आतंकवादी प्रभाव वाले क्षेत्रों में रा.ज.र. किस प्रकार तैयार करेगा?

राष्ट्रीयता का प्रश्न साधारण नहीं है। क्या सरकार ने इतनी आसानी से इसके दूरगामी प्रभावों को ठंढे बस्ते में डाल दिया है? आखिर वह कौन-सी बाध्यता है, जो सरकार को स्वघोषित राष्ट्रीयता को छानबीन करने के लिए रोकती है? यह संशयपूर्ण तो है ही, राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता और आंतरिक सुरक्षा के साथ बेमानी भी है। विशिष्ट पहचान प्राधिकरण के प्रमुख नंदन निलकणी गैर-नागरिकों को रा.ज.र. में शामिल किए जाने से संबंधित सवाल का जवाब संभवतः नीति निर्धारकों के दबाव में देते हैं, "काफी विचार-विमर्श के बाद ही यह तय किया गया है। पहली बात तो यह है कि यह नम्बर कोई नागरिकता पमाण-पत्र नहीं होगा। सिर्फ पहचान को सुनिश्चित करेगा।"[66] इस पर व्यापक विचार-विमर्श की आवश्यकता है, जिसको जान-बझकर नही होने दिया गया है। प्रो. अमिताभ कुंडु का मानना है कि "इस प्रकार के इतन महत्वपूर्ण विषय पर देश में अपेक्षित बहस नहीं की गई है।"[67] कुंडु यह भी मानते हैं कि रा.ज.र. की परियोजना में सामाजिक आयामों की समझ की कमी दिखाई पड़ती है। उनको इस बात का भी खतरा दिखाई पड़ रहा है कि शहरीकरण और देश के लोगों के प्रवास से जुड़ी अनेक समस्याएँ उपस्थित होंगी।

रा.ज.र. के द्वारा इकट्ठी की गई बायोमट्रिक एवं प्रदान की जानेवाली विशिष्ट संख्या का उपयोग जरूर आंतरिक सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो सकता है। इससे उन क्षेत्रों में जहाँ पुलिस एवं जाँच एजेंसियों को संभावित या संदिग्ध आतंकवादी, गुनाहगारों एवं असामाजिक तत्वों को पकड़ने, उन्हें पनाह देनेवालों को चिह्नित करने में सामाजिक-राजनीतिक कारणों से जो परेशानी होती है, उससे बचा जा सकता है। ऐसे लोगों की गतिविधियों (आवागमन, वित्तीय आदान-प्रदान आदि) को जानने में सुविधा होगी। लेकिन क्या सरकार की इच्छाशक्ति इस प्रकार की है, यह एक महत्वपूर्ण सवाल है। निलेकणी का इस संबंध में दिया गया व्यक्तव्य सरकार की दृष्टि एवं इच्छाशक्ति का आभास कराती है। निलकणी के अनुसार "हमारा उद्देश्य लोगों को सरकारी योजनाओं का फायदा पहुँचाना और

---

[66] नंदन निलेकणी के साथ मुकेश केजरीवाल का साक्षात्कार, खत्म होगा पहचान का फर्जीवाड़ा, दैनिक जागरण, 10 मई 2010

[67] देखें, परिशिष्ट-III "भारतीय जनगणना 2011 : चुनौतियाँ एवं परिप्रेक्ष्य"

सरकारो योजना में फैले भ्रष्टाचार को रोकने मे मदद करना है। आगे चलकर एजेंसियां इसकी मदद अपराधियों पर शिकंजा कसने मे भी ले सकती हैं।"[68]

रा.ज.र. की परी परियोजना को एक सही दिशा देने की आवश्यकता है। संक्षेप में, इसे नागरिकों, गैर–नागरिकों एवं घुसपैठियों की पहचान का साधन बनाया जाना चाहिए, न कि उपरोक्त तीनों प्रकार के निवासियां के बीच के अंतर को समाप्त कर उसे एक श्रेणी में स्थापित हो जाने का सहज उपाय बनने देना चाहिए। इसकी शुचिता के लिए इसे जनगणना से अलग रखना चाहिए एवं नागरिक, पुलिस एवं राजस्व अधिकारियों की संयुक्त टीम का उपयोग एवं स्थानीय लोगों के सदभावपूर्ण सहयोग के द्वारा इस परियोजना को आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

[68] वही

परिशिष्ट-I

ब्रेन स्टार्मिंग सेशन

तिथि : 10 मई, 2010

समय : 12 बजे दोपहर से 3.30 बजे अपराह्ण तक

आयोजन स्थल : आईपीएफ सेमिनार हॉल

डी-51, हौज खास, नयी दिल्ली-110016

आयोजनकर्त्ता : भारत नीति प्रतिष्ठान

ब्रेन स्टार्मिंग सेशन में भाग लेने वाले सहभागियों की सूची

1. प्रो. राकेश सिन्हा	मानद निदेशक, भारत नीति प्रतिष्ठान
2. श्री गोपाल अग्रवाल	न्यासी, भारत नीति प्रतिष्ठान और चिंतक
3. श्री उदय सिन्हा	वरिष्ठ पत्रकार एवं फेलो, भारत नीति प्रतिष्ठान
4. श्री वेंकट नारायणन	सेवानिवृत्त भारतीय प्रशासनिक अधिकारी
5. श्रीमती आशा दास	पूर्व सचिव, सामाजिक न्याय मंत्रालय, भारत सरकार और पूर्व सदस्य सचिव, रंगनाथ मिश्र आयोग
6. श्री नेतराम थगेला	संपादक, 'सामाजिक उत्थान' और महासचिव, ऑल इंडिया कॉन्फेडरेशन ऑफ एससी/एसटी
7. प्रो. राजवीर शर्मा	एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, दिल्ली विश्वविद्यालय
8. श्री सुशील पंडित	सामाजिक कार्यकर्ता, पूर्व अध्यक्ष, विश्व छात्र युवा संगठन
9. श्री कमर आगा	विजिटिंग प्रोफेसर, जामिया मिलिया, और वरिष्ठ पत्रकार
10. श्री भूपेंद्र यादव	वरिष्ठ अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय और राष्ट्रीय सचिव, भारतीय जनता पार्टी
11. श्री सतीश पेडणेकर	वरिष्ठ पत्रकार, जनसत्ता

12. प्रो. अनिल ठाकुर	एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, दिल्ली विश्वविद्यालय
13. प्रो. देवराज	एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, दिल्ली विश्वविद्यालय
14. प्रो. अमरजीव लोचन	एसोसिएट प्राफेसर, इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय
15. श्री अवधेश मिश्रा	वरिष्ठ पत्रकार
16. श्री विनोद शुक्ला	वरिष्ठ पत्रकार, सहारा टाइम्स (अंग्रेजी साप्ताहिक)
17. डॉ. सरोज रथ	पीएचडी, जएनयू, रिसर्च एसोसिएट, होसेई विश्वविद्यालय, टोक्यो (जापान)
18. श्री वृंदावन मिश्रा	शोधार्थी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
19. श्री अनिल कुमार	शोधार्थी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
20. श्री जयशंकर	शोधार्थी, भारत नीति प्रतिष्ठान
21. श्री सुभाष चन्द	शोधार्थी, भारत नीति प्रतिष्ठान
22. श्री राजीव कुमार	शोधार्थी, भारत नीति प्रतिष्ठान
23. श्री राजू रंजन	शोधार्थी, भारत नीति प्रतिष्ठान

ब्रेन स्टार्मिंग सेशन में हुई परिचर्चा का संक्षिप्त सार

प्रो. राकेश सिन्हा : भारत नीति प्रतिष्ठान ने जनगणना के विभिन्न आयामों पर गहन विचार-विमर्श की प्रक्रिया शुरू की है। इसमें जनगणना विशेषज्ञों एवं समाज विज्ञानियों की भागीदारी सुनिश्चित की गयो है। इसी क्रम में यह ब्रेन स्टार्मिंग सेशन आयोजित की गयी है। जनगणना औपनिवेशिक काल में शुरू हुई थी, तब से यह प्रत्येक दस वर्षों के अंतराल में बिना किसी अवरोध या विवाद के होती आ रहो है। औपनिवेशिक काल में जनगणना 'शासितों' की होती थी। स्वतंत्रता के बाद इसका स्वरूप बदल गया। अब 'नागरिकों' की जनगणना होती है। अतः दोनों ही जनगणनाओं में उद्देश्य, प्रक्रिया और उपयोग-तीनों स्तरों पर गुणात्मक अंतर होना स्वाभाविक है। जनगणना का उद्देश्य तटस्थ आंकड़ों को एकत्र करना होना चाहिए एवं इसे देश क विकास की प्रक्रिया से जोड़ा जाना चाहिए। यह देखना चाहिए कि जनगणना की प्रकृति, स्वरूप, प्रक्रिया और उद्देश्य संविधान सभा में किये गये संकल्पों के अनुकूल ह या नहीं। यह संकल्प था समानतावादो समाज की स्थापना का, जो

पहचान आधारित राजनीति को नकारता है। इसलिए हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि जनगणना का तरीका क्या होना चाहिए? क्या वर्तमान प्रक्रिया पूरी तरह सुसंगत है? जनगणना की उपयोगिता बढ़ाने के लिए इसकी प्रक्रिया एवं स्वरूप में क्या परिवर्तन लाना चाहिए? प्रशिक्षित छात्रों/शोधार्थियों को इसमें संलग्न कर ऐसा किया जा सकता है। क्या विश्वविद्यालयों में जनगणना संकाय स्थापित किया जाना चाहिए?

प्रतिष्ठान में ऐसे ही तमाम प्रश्नों को लेकर एक रचनात्मक शोधपरक बहस चल ही रही थी कि संसद में जनगणना में जाति की गणना शामिल करने को मांग उठायी गयी। सरकार ने इस मांग के प्रति अपनी अनुकूलता दिखाकर विषय को गंभीर बना दिया है। जातियों के आंकड़ों का एकत्र करने की मांग कोई मुद्दा नहीं बनता, यदि इसके पीछे विकास का परिप्रेक्ष्य और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण होता। परंतु इसके विपरीत यह मांग राजनीतिक उद्देश्य से उठायी गयी है। इसलिए इस विषय पर गहन विचार-विमर्श की आवश्यकता है। यह भी विचारणीय है कि इस प्रकार की माँगों के परिणामों का वैकल्पिक समाधान क्या हो सकता है?

भारत नीति प्रतिष्ठान ने इस प्रकार जनगणना के विभिन्न पहलुओं पर 12 बिंद् तैयार किए हैं, जिन्हें विचारार्थ रखा गया है। इसमें एक महत्वपूर्ण प्रश्न 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर' का भी है।

उदय सिन्हा : (12 बिन्दओं का विमर्श-पत्र प्रस्तुत करते हुए)* जब हमने इस विषय पर विचार शुरू किया, तो हमारे सामने बदली हुई आर्थिक परिस्थितियाँ एवं चुनौतियाँ थीं। हमारे सामने एक सवाल उठ खड़ा हुआ है कि जनगणना की प्रक्रिया में आंकड़ों का एकत्रोकरण समाज विज्ञान को दृष्टि से किया जाता है या इसमें मात्र लोगों को गिनती को जाती है? जनगणना के संदर्भ में दो महत्वपूर्ण प्रश्न उभरकर हमारे सामने आय हैं : पहला, क्या जनगणना को जाति के आंकड़ों के एकत्रोकरण का माध्यम बनाना चाहिए और दूसरा, राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर का औचित्य कितना है एवं क्या इसे जनगणना की प्रक्रिया के साथ किया जाना चाहिए?

---

* विमर्श-पत्र म्लतः जाति आधारित जनगणना, रा.ज.र., जनगणना के तरीके, आँकड़ों की प्रकृति और आँकड़ों का बृहद परिप्रेक्ष्य में इस्तेमाल पर आधारित था। विमर्श-पत्र का उद्देश्य ब्रेन स्टार्मिंग सेशन में हिस्सा ले रहे लोगों को विषय से अवगत कराना था न कि प्रतिष्ठान का सैद्धांतिक पक्ष रखना।

सतीश पेडणेकर : आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक ने पिछड़े वर्गों की गणना अपने-अपने तरीके से कराई है। आन्ध्र प्रदेश इस में ज्यादा सफल माना जा सकता है। 2001 की जनगणना में भी जाति को शामिल किए जाने की मांग हुई थी।

आशा दास : 2001 की जनगणना में जाति को शामिल करने के प्रस्ताव को सरकार ने अस्वीकार कर दिया था। इसका कारण बताया गया था कि जाति को शामिल किये जाने से जनगणना की वैधता पर सवाल खड़ा होगा।

उदय सिन्हा : मंडल कमीशन की अनुशंसा को लागू करने के समय यह बात उठी थी कि जातियों के आंकड़े एकत्र किये जायें। तब भी उसका विकल्प जनगणना नहीं था। न्यायालय का आदेश था कि राज्य सरकारें इस कार्य हेतु आयोगों का गठन करें।

सतीश पेडणेकर : जाति आधारित जनगणना की एक और व्यावहारिक कठिनाई यह है कि केन्द्र और राज्यों की अलग-अलग सूचियाँ हैं। बहुत सार राज्य तो ऐसे हैं, जहाँ कई जातियों के नाम सूची में दर्ज नहीं हैं। प. बंगाल में सरकार ने अन्य पिछड़े वर्गों की संख्या 7 प्रतिशत अनुमानित किया है, लेकिन इसमें यह संदेह स्वाभाविक है कि यह संख्या इतनी कम नहीं हो सकती है।

आशा दास : इसका कारण प. बंगाल में भ्मि सुधार के कारण समाज में आयी समानता है।

सरोज रथ : मैं श्रीमती दास से असहमत हूँ। सामाजिक प्रगति के सूचकांक में पश्चिम बंगाल 18वें पायदान पर है, जबकि तमिलनाड, केरल, कर्नाटक उससे ऊपर हैं, फिर भी तमिलनाड में 97 प्रतिशत जातियाँ पिछड़ी हैं।

आशा दास : आपको यह भी देखना चाहिए कि वहाँ पिछड़ी जातियों की संख्या 97 प्रतिशत कैसे हुई, जबकि 1951 में ऐसा नही था। इसका एक बड़ा कारण तमिलनाडु से बहिर्गमन (Migration) है।

सरोज रथ : जाति की जनगणना 1911 में शुरू हुई और यह आगे के दो दशकों में भी होतो रहो, परंतु इसमें अनेक कठिनाइयाँ थीं। केंद्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा बनाई गई जातियों की सूचियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। स्वयं जनगणना आयुक्त ने 1931 की रिपोर्ट में (पृ. 430) इन व्यतिक्रमों का उल्लेख किया है। 1911, 1921 एवं 1931 में एक ही जाति के लोग अलग-अलग जातियों के होने का दावा करते रहे। वैश्य, क्षत्रिय बन गया, फिर

सोनार क्षत्रिय बना और पुन: 1931 में वह स्वयं के विषय में ब्राह्मण होने का दावा करने लगा।

उदय सिन्हा : निस्संदेह भारत में जातियों के बीच गतिशीलता (Mobility) रही है। इसके अनेक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कारण हैं। यह तब भी था और अब भी है।

सरोज रथ : तब ऊँचो जाति कहलाने/बनने का होड़ था, अब होड़ उल्टी दिशा (निम्न जाति बनने) में है। काका कालेकर आयोग (1956) ने 2200 जातियों को और मंडल आयोग ने (1979) 3300 जातियों को पिछड़े वर्गों की सूची में रखा। पिछड़े वर्गों के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग की सूची में 5700 जातियों को रखा गया है। 18 राज्य ऐसे हैं जहाँ अब तक पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन नहीं किया जा सका है।

सतीश पेडणेकर : जातियों में गतिशीलता (Mobility) हमेशा से रही है। एक जमाने में इंदौर के महाराजा होल्कर, ग्वालियर के शिंदे और बड़ौदा के गायकवाड पिछड़ी जाति के माने जाते थे। लेकिन जब ये स्वतंत्र राजा बन गये, तो इन सबको क्षत्रिय माना जाने लगा। पेशा बदलने से जाति भी बदल गई। केंद्रीय मंत्री श्री सुशील कुमार शिंदे दलित हैं, तो (उसी समुदाय के) ज्योतिरादित्यराव सिंधिया क्षत्रिय हैं। गायकवाड आज भी दलित है, लेकिन बड़ौदा के महाराजा गायकवाड क्षत्रिय हैं।

आशा दास : मूल प्रश्न हमारे सामने है कि जातियों की गणना हम जनगणना में क्यों करना चाहते हैं? अनुसूचित जातियों व जनजातियों की गणना सामाजिक यथार्थता है। यह आधार नहीं बन सकता है।

सुशील पंडित : हमलोगों को जाति को जाति के तौर पर देखना चाहिए, इसे मुद्दा नहीं बनाना चाहिए। जनगणना की पूरी प्रक्रिया नागरिकों के व्यक्तिगत आँकड इकट्ठ करने को है, पर यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि उन आंकड़ों का इस्तेमाल किसी निहित स्वार्थ की पूर्ति हेतु नहीं किया जाए। उदाहरणार्थ जनगणना के दौरान यदि मैं स्वयं को अन्य पिछड़ी जाति का घोषित कर भी दूँ, तो मैं आरक्षण पाने का पात्र नहीं बन पाऊँगा। इसके लिए मुझे व्यक्तिगत तौर पर प्रमाण–पत्र पेश करना हागा। हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि कहीं जनगणना से अधिक जाति का प्रश्न महत्व का न बन जाये। आंकड़ों का कैसे इस्तेमाल होता है, यह एकदम अलग विषय है। शंकाओं को आधार बनाकर हमें इस विषय पर पहले ही निर्णय नहीं करना चाहिए। ऐसा ही भाषा के प्रश्न पर पंजाब में 1961 एवं 1971 की जनगणनाओं में हुआ था। मेरे अनुसार सभी तरह के आंकड़ों का एकत्रोकरण

वस्तुपरक एवं शुद्धता (Accurately) के साथ होना चाहिए। मेरा मानना है कि आंकड़े निष्पक्ष होते हैं। अतः इनको श्रद्धा के साथ देखना चाहिए।

प्रो. राजवीर शर्मा : पिछले साठ सालों से जाति आधारित आरक्षण, न्याय, समानता, स्वतंत्रता आदि पर लोक विमर्श होता रहा है। पर आज, हमारे समाज को प्राथमिक एवं सामूहिक रूप से विकास पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। एक समय था जब भारत मं जाति एवं वर्ग के बीच एक प्रकार की समानता थी। पिछले दो दशकों से यह विमर्श चल रहा है कि सामाजिक न्याय की अवधारणा जाति पर आधारित होनी चाहिए या सामाजिक-आर्थिक कारकों पर। पर दुर्भाग्य से राजनीतिक या शैक्षिक स्तरों पर ओबीसी या पिछड़ेपन को परिभाषित करने की कोई कोशिश नहीं हुई है। यह सही है कि अगर मैं अपने आपको जनगणना में गलत तरीके से ओबीसी घोषित कर भी दूँ, तो व्यक्तिगत स्तर पर मैं इसका लाभ बिना प्रमाण-पत्र पेश किये नहीं ले सकता हूँ। लेकिन इन आंकड़ों का जातियों के तथाकथित नेताओं के द्वारा गलत उपयोग होगा। वे अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए इन आंकड़ों के आधार पर नीतियों में परिवर्तन की मांग करेंगे। अंततः यह भारतीय राजनीति को 'ग्राहक' (Client) आधारित बना देगी। इससे हम कहीं क नहीं रह जाएंगे। चाहे ओबीसी के आरक्षण का मसला हो या नरेगा के क्रियान्वयन का, राजनीतिज्ञों द्वारा आश्रित वर्ग तैयार किया जा रहा है। जनगणना को राजनीतिज्ञों के हाथों का उपकरण नहीं बनने देना चाहिए, न ही इसका राजनीतिकरण होना चाहिए। इसमें शिक्षा, बेरोजगारी, जीवन-स्तर, गंदी बस्तियों, स्वास्थ्य, स्वच्छ पेयजल, ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों आदि से सम्बंधित आंकड़े एकत्र किय जान चाहिए तभी यह देश की बहद सामाजिक-आर्थिक नीतियों को प्रभावित करने वाला उपकरण बन पाएगा।

नेतराम ठगेला : एसे देश में जहाँ कुत्ते भौंकने के नाम पर बस्तियाँ जला दी जाती हैं, इंसानों को जिंदा जला दिया जाता हो, वहाँ हम जाति को अलग रखने की बात करें तो यह सही नहीं होगा। किसी को भी इस बात पर चिंतित नहीं होना चाहिए कि इन आँकड़ों का इस्तेमाल किस रूप में किया जाएगा। किसी जाति विशेष की सही स्थिति जानने के बाद ही उसके लिए उपयुक्त नीतियों का निर्माण किया जा सकता है। उपयुक्त नीतियों के निर्माण के लिए इससे बेहतर अन्य कोई उपकरण नहीं हो सकता, किंतु इसका दुरुपयोग निहित राजनीतिक स्वार्थों के लिए नहीं होना चाहिए। जनगणना की प्रश्नावली में कुछ और प्रश्नों को शामिल किया जाना चाहिए, जैसे कि आय के स्रोत, निवास स्थान से प्राथमिक स्वास्थ्य

केंद्र की दूरी और वहाँ मिलने वाली सुविधाएं, निवास स्थान से पेयजल स्रोत की दूरी, शिक्षा की उपलब्धता और उसका परिवेश आदि। इन सबको जानने के बाद ही हम अपने विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों की स्थितियों का सही आकलन कर पाएंगे।

कमर आगा : आजादी के बाद जातिविहीन समाज की कल्पना की गइ थी और उसी वजह से जनगणना में जाति को शामिल और वर्णित किया गया था। लेकिन बाद में जाति आधाारित राजनीति बढ़ती गयी। जनगणना का राजनीतिकरण नहीं होना चाहिए। यदि इसका राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इस्तेमाल होता है, तो इसके कई दुष्परिणाम परिलक्षित होंगे। पहला, जाति की पहचान हमारे राष्ट्रीय और क्षेत्रोय पहचान से अधिक मजबूत हो जाएगी। इससे बहुत सारी समस्याएं उत्पन्न होंगी; जैसे आरक्षण।

आर. वेंकट नारायणन : हमलोग एक मौलिक विषय पर चर्चा कर रहे हैं। मैं इस बात से एकदम सहमत नहीं हूँ कि ये आंकड़े निष्पक्ष होते हैं इसलिए इनका सम्मान किया जाना चाहिए। देश के विकास के लिए बनने वाली व्यापक नीतियां इन्हीं व्यापक आंकड़ों पर निर्भर होतो हैं, और अगर जाति के आंकड़ों का एकत्रीकरण जनगणना क माध्यम से हो, तब विषम और व्यापक नीतियाँ बनवा लेना आसान हो जाएगा। तब राजनीतिक दलों को संसद में इन नीतियों के विरुद्ध जाना मुमकिन नहीं होगा।

हमारा समाज जाति आधारित है। जाति की पात्रता यदि पिछड़ेपन पर आधारित हो, तब अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गों, अन्य पिछड़े वर्गों एवं अति पिछड़े वर्गों का दायरा बढ़ता जायेगा। कर्नाटक में 95 प्रतिशत जनसंख्या 'अन्य पिछड़ी जातियों' (ओबीसी) के अंतर्गत आती हैं, तो आन्ध्र एवं तमिलनाडु में यह 100 प्रतिशत पार कर चुकी है।*

अत: यह बात ठीक नहीं है कि हम कहें कि पहले जनगणना में आंकड़ा एकत्र कर लें, फिर देखें कि इसका पयोग कैसे होता है। जनगणना का उपकरण क रूप में उपयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि जनगणना अपने आप में तटस्थ होती है। इसे न्यूनतम परंतु प्रामाणिक आँकड़ों को एकत्र करते हुए नीति निर्माताओं द्वारा लोक नीतियों के निर्माण हेतु सूत्र उपलब्ध कराना चाहिए। जिस जनगणना को अब तक पवित्र माना जाता रहा है, उसके माध्यम से व्यापक स्तर पर आंकड़ों को एकत्र करने से उसकी गुणवत्ता में गिरावट होगी....। जनगणना में जाति को शामिल करने से देश और समाज का छोटे-छोटे टुकड़ों में विखंडन होगा, इससे

---

* तमिलनाडु में 88 प्रतिशत ओबीसी है।

सामाजिक जीवन में विद्वेष बढ़ना स्वाभाविक ही है। यह एक सच्चाई है, जिससे कोई इनकार नहीं कर सकता। मंडल आयोग की अनुशंसा और उसके आधार पर दिए गए आरक्षण से समाज में जातिवाद एवं जाति व्यवस्था को बल मिला है।

आशा दास : पिछड़ेपन को राज्य के विशेषाधिकार (Privilege) से जोड़ दिया गया है। यही कारण है कि जो लोग संपन्न हैं, वे भी इसका लाभ उठाने के लिए अपने आपको पिछड़ा घोषित करते हैं। क्या हम इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहते हैं? जाति को जनगणना में शामिल करने से ऐसा ही होगा।

आर. वेंकट नारायणन : हमें जाति और जनगणना के सम्बंध में नीति निर्माण की प्रक्रिया के विषय पर सवाल खड़ा करना चाहिए। पिछले साठ वर्षों से राज्य की यह नीति रही है कि जाति को जनगणना में शामिल नहीं करना है। हमारा देश एक लोकतांत्रिक देश है। इसलिए कोई भी नीतिगत बदलाव या निर्णय एक विशिष्ट प्रक्रिया के तहत होना चाहिए। स्थापित प्रक्रिया की उपेक्षा कर जनगणना पर सरकार निर्णय करना चाहती है। दूसरी बात, सरकार कृमि लेयर से संबंधित निर्णय को लागू नहीं कर सकी है। सामाजिक-आर्थिक आयाम ही इस प्रकार की नीति के निर्माण का आधार होना चाहिए।

सुशील पंडित : मैंने आरंभ में जो कहा उसे गलत रूप में लिया गया। मेरा यह मानना नहीं है कि आंकड़ों का नीति निर्माण में उपयोग नहीं होता है। मंने सीधे तौर पर यह कहा था कि इन आंकड़ों का व्यक्तिगत स्तर पर किसी निर्णय में उपयोग नहीं हो सकता है।

जहाँ तक राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर का सवाल है, इस पर स्पष्टता होनी चाहिए। अभी लोगों ने घुसपैठियों का विषय उठाकर इसका विरोध किया। वे दो करोड़ हैं या चार करोड़ या आठ करोड़, जो भी हों, आप जनगणना को भूल जाइये। वे दो महत्वपूर्ण विधिवत एकत्रित आंकड़ों के हिस्से बने हुए हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली का लाभ उन्हें राशन कार्ड के आधार पर मिल रहा है और दूसरा, मतदाता सूची में अपना नाम डलवाकर वे देश की राजनीति में बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। मैं कहूँगा कि हमें कबूतर की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए, जो बिल्ली को देखकर अपनी आँखें बंद कर लेता है। मैं इस विषय पर बहुत स्पष्ट हू, रा.ज.र. से 'नागरिकता' सत्यापन और जाँच के बाद ही मिलेगी। इसमे सिविल सोसाइटी, राजनीतिक दलों एवं गैर सरकारी संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

भूपेंद्र यादव : ज्योतिबा फूले ने जब सत्यशोधक समाज की स्थापना की थी, तो कहा था-'ज्ञान बिना मति गई, मति बिना गति गई, गति बिना वित्त गया, वित्त बिना अनर्थ हुआ,

अनर्थ हुआ तो शूद्र हुआ।' यह घटना 1880 की है। 1950 में काका कालेकर आयोग ने पिछड़े वर्गों को पहचान के लिए जो आधार बनाये थे, वे 1880 से भिन्न थे। इस रिपोर्ट पर इसके 11 सदस्यों की असम्मतिपूर्ण राय थी। 1980 के मंडल कमीशन के समय समाज के जो आधार थे, आज समाज की स्थितियाँ उससे भिन्न हैं। इन 30 सालों में समाज में बहुत परिवर्तन हो चुका है। आज यदि आपके मकान की ऊपरी मंजिल पर कोई अनुसूचित जाति का व्यक्ति रहने लगता है, तो आप उससे यह नहीं पूछते कि आप किस जाति के हैं। पिछले तीन दशकों में कृषि भूमि में ह्रास होने के कारण, खनन के कारण एवं बड़ी-बड़ी परियोजनाओं के कार्यान्वयन के कारण देश में 8 करोड़ लोगों का विस्थापन हुआ है। इनमें ज्यादातर वैसे लोग हैं, जो शुरू से ही हाशिए पर रहे हैं। बढई, कुम्हार, तेली, धोबी-इनके परंपरागत उद्योग-धंधे नष्ट हो गए। आज अगर उन जातियों की पहचान की जाए, फैलते हुए शहरों के समूह में उनको तलाशा जाए, तो निश्चित रूप से कुछ मिले या न मिले, एक और नई जाति जरूर बन जाएगी। इसकी कोई प्रासंगिकता भी नहीं है। जनगणना से तात्पर्य 'व्यक्तियों की गणना' (Head Counting) से है। इसलिए जाति को इससे संबद्ध नहीं किया जाना चाहिए।

सरकार द्वारा कराई जा रही जनगणना के विभिन्न पहलुओं पर विमर्श हेतु जो पत्र रखा गया है, उसमें एक बिंदु 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर' का जोड़ा जाना भी है। यह 'रा.ज.र.' क्या है और इसको जनगणना के साथ सम्बद्ध किया जाना कितना उचित है? हमारे देश में जनगणना 1948 के 'जनगणना अधिनियम' के अंतर्गत करायी जाती है, और इसका सेक्शन-15 गोपनीयता का प्रावधान करता है। 1999 में करगिल युद्ध के बाद 'करगिल एक्शन कमेटी' बनी थी। उस समय यह तय हुआ था कि भारत की 6300 किलोमीटर लंबी समुद्री सीमा एवं विभिन्न देशों से सटे देश के सीमाई क्षेत्रों में काफी बड़ी संख्या में विदेशियों की घुसपैठ हुई है। इसलिए 2003 में 'नागरिकता एक्ट' (Citizenship Act) में संशोधन किया गया और 2003 में ही 'नागरिकता कानून' (Citizenship Rules) लागू हो गया। नागरिकता कानून में राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (National Population Register), राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर (National Citizenship Register) और राष्ट्रीय पहचान-पत्र (National Identity Card) का प्रावधान किया गया। इस बार जनगणना दो चरणों में की जा रही है। गणनाकारों (Enumerator) के पास दो प्रकार के फार्म होंगे। एक फार्म में मांगी जाने वाली सूचनाएं गोपनीयता कानून के अंतर्गत होंगी, जो आर.टी.आई. के अंतर्गत नहीं आएंगी, जबकि दूसरे

फार्म में मांगी जाने वाली सूचनाएं आर.टी.आई. के अंतर्गत आएंगी। जरा सोचें, यह अपने आप में कितना विरोधाभाषी और अनैतिक है!

जनगणना के पहले चरण में जिसमें आवासों की गणना हो रही है, उसमें उन्होंने (सरकार ने) कहा है कि 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर' बनाया जाएगा जिसका प्रमाणन स्थानीय रजिस्ट्रार द्वारा किया जाएगा, बगैर इसकी सत्यता की जाँच के। इस समय देश में बहुत बड़ी समस्या घुसपैठियों की है। देश में करीब 4 करोड़ घुसपैठिये हैं। सरकार का यह मानना है कि इससे यह समस्या खत्म हो जाएगी। सरकार सबको 'विशिष्ट पहचान संख्या' का कार्ड दे देगी और अदालत में एक एफिडेविट देकर यह घोषणा कर देगी कि अब कोई घुसपैठिया नहीं है अर्थात् सभी घुसपैठियों को वैध घोषित कर दिया जाएगा।

यह एक बहुत ही गंभीर बात है। आज किसी का भी ध्यान 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर' की ओर नहीं है। 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर' को सबसे पहले जनगणना से अलग किया जाना चाहिए। दरअसल 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर' का निर्माण पुलिस-प्रशासन द्वारा जांच के आधार पर किया जाना चाहिए, जबकि जनगणना का संबंध नीति और शोध से है। इसलिए इन दोनों को अलग किया जाना चाहिए। आश्चर्य की बात है कि जब इस मुद्दे को 'गृह मंत्रालय की स्थायी समिति' के सामने उठाया गया, तो समिति ने जोर देकर अनुशंसा को कि सरकार इन दोनों कार्यवाहियों को अलग करे, नहीं तो भारत के सीमावर्ती एवं समुद्री सीमाओं के आसपास रहने वाले घुसपैठियों के नाम भी जनसंख्या रजिस्टर में जोड़ दिए जाएंगे। इससे जनगणना की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न खड़ा होगा। यह राष्ट्रीय एकता, अखंडता आर सामाजिक सौहार्द्र तीनों के लिए खराब है। यह घुसपैठियों को वैधानिकता देने का काम करेगा। इसलिए यह बहुत ही आवश्यक है कि जनगणना को इससे अलग किया जाए।

इस विमर्श-पत्र में एक विचारणीय बिंदु जनगणना में जाति को शामिल करना भी है। अत: इस मुद्दे पर मौन साध लेना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि यह देखा गया है कि समाज में जिस चीज का विरोध किया जाता है, उसकी महत्ता उतनी बढ़ जाती है और वह उतनी ही मजबूती से उभरकर सामने आता है। अत: इस मुद्दे पर मौन साध लेने पर यह स्वत: ही नेपथ्य में चला जाएगा। आज जरूरत है एक सकारात्मक बहस शुरू करने की, 2010 में समाज की जो स्थिति है, उसके विकास के मानक कैसे तय किए जाएं, इस पर बहस करने की।

देवराज : हम दीर्घकालिक विकास की बात कर रहे हैं। अभो तक भारतीय समाज की संरचना जाति पर आधारित है और जाति जानने के दो ही आधार हैं-'जन्म' से और 'पेशे से। आज हम जिस जाति आधारित जनगणना की बात कर रहे हैं, उससे राजनीतिक दलों को फायदा होगा। इस समय पेशे के आधार पर आदमी की पहचान होनी चाहिए। मेरा मानना है कि 2011 की जनगणना का आधार पेशा होना चाहिए।

अनिल ठाकुर : जनगणना आंकड़ों का एकत्रोकरण है। जहां तक मुझे लगता है, सभी राजनैतिक दल जनगणना के मुद्दे को इस्तेमाल करने में लगे हुए हैं। इससे हम इनकार नहीं कर सकते कि जाति समाज की सच्चाई है, पर विकास का पैमाना पिछड़ेपन होना चाहिए न कि जाति। पिछड़ेपन की पहचान के लिए सरकार द्वारा गठित सक्सेना कमेटी हो या तेंदुल्कर कमेटी या फिर दासगुप्ता कमेटी-इनके आंकड़े अलग-अलग हैं। एक कमेटी की रिपोर्ट है कि 26 फीसदी जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे है, दूसरी की रिपोर्ट है कि 40 फीसदी जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे है और तीसरी कमेटी की रिपोर्ट है कि 80 फीसदी जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रही है। हमारे पास सही और उपयुक्त आंकड़े नहीं हैं कि कितने परिवार गरीबी रेखा के नीचे हैं और किस मानदंड के आधार पर गरीबी रेखा का निर्धारण किया गया है? इसी तरह स्वास्थ्य, शिक्षा एवं अन्य बुनियादी समस्याओं के विषय में कोई ठोस और प्रामाणिक आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। जब तक इन बिंदुओं पर सर्वेक्षण नहीं कर लिया जाता, पिछड़ेपन का मानक नहीं तय कर लिया जाता, विकास के मानक तय नहीं किए जा सकते। समाज की वास्तविकता का पता तो चले। इस संदर्भ में मैं आपको एक उदाहरण देना चाहूंगा। 1978 में बिहार में स्व.कर्पूरी ठाकुर ने Annexure – 1 और Annexure – 2 का प्रावधान किया था जिसे बाद में सुप्रीम कोर्ट ने 'क्रीमी लेयर' के रूप में प्रस्तुत किया। Annexure – 1 में उन जातियों को सम्मिलित किया गया था जो ओबीसी में अमीर जातियां थीं। Annexure – 2 में निचली जातियों को सम्मिलित किया गया था।

एक तरफ सरकार आरक्षण से इनकार भी नहीं कर रहो है, ओबीसी और एससी-एसटी आरक्षण की बात भी की जा रही है। दूसरी तरफ सरकार को यह भी नहीं पता है कि Annexure – 1 में अन्य पिछड़ी जातियों की निम्न जातियां कितनी हैं? अतः मेरा यह मानना है कि इस मुद्दे पर अधिक जोर न दिया जाए। राजनीतिक दल इसको एजेंडा बनाकर इस पर राजनीतिक रोटी सेंकना चाहते हैं।

गोपाल अग्रवाल : प्रत्येक जनगणना में किसी न किसी विशेष विषय पर जोर दिया जाता है। मैं ऐसा समझता हूं कि इस बार की जनगणना में आर्थिक विषयों पर बल दिया जाना चाहिए। सरकार द्वारा कराई जाने वाली जाति आधाारित जनगणना को रोकने का प्रयास करना चाहिए। भारत आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से एक महत्वपूर्ण देश ह। जब तक हमारे पास सही और पूर्ण आर्थिक आंकड़े नहीं होंगे, तब तक हम एक सुदृढ़ आर्थिक नीति नहीं बना सकते हैं। यद्यपि आज भारत में जाति एक महत्वपूर्ण पक्ष है, लेकिन हमने जाति रहित समाज की संकल्पना की है। इसलिए हमें जाति को निम्न वरीयता दनी चाहिए। जहां तक 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर' की बात है, तो मेरा यह मानना है कि एन.पी.आर. और यू.आई. डी. दोनों ही महत्वपूर्ण विषय हैं। जब भी इन विषयों पर कार्य प्रारंभ होगा तो इस प्रकार की दिक्कतें आएंगी ही। इसलिए मुझे लगता है कि इसे रोकना नहीं चाहिए। कम से कम आगे और 8 करोड़ घुसपैठिये तो नहीं आएंगे।

अमरजीव लोचन : हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीन काल में कौटिल्य ने जनसंख्या दर्ज करने का एक सिद्धांत अपनाया था। मेगास्थनीज ने भी मौर्यकाल में इसका जिक्र किया है। उन्होंने स्वास्थ्य, आजीविका का स्रोत, मूल–उत्पत्ति और सामाजिक गतिशीलता आदि की चर्चा अपनी जनसंख्या गणना में की है। यदि हम उस पर गौर करें, तो हम इस समस्या से निपट सकते हैं। जैसा कि आपने कहा, इस बार की जनगणना में आर्थिक पहलू पर जोर देना चाहिए। मुझे ऐसा लगता है कि आर्थिक सम्पन्नता के साथ हमें हमारी राष्ट्रीय पहचान से किए जाने वाले समझौतों के बारे में भी सोचना चाहिए। आठ करोड़ लोग अवैध रूप से आ चुके हैं, दूसरे आठ करोड़ न आएं... यह कुछ ऐसी बात हुई कि अभी जो समस्या आ गई है, उसे झेल लें, आगे कोई समस्या न आए, उसकी तैयारी करं। उस आठ करोड़ में जो आठ लाख करोड़ की ताकत है, उससे हम इनकार नहीं कर सकते। हमारी सांस्कृतिक मूल्यों पर लगातार हमले हो रहे हैं। चाहे हमें जाति की गणना करनी हो या नहीं, हमें राष्ट्रीय विषय को सबसे ज्यादा महत्व देना चाहिए।

सतीश पेडणेकर : जनगणना का प्रामाणिक होना भी अति आवश्यक है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पिछले जनगणना आयुक्त को इसलिए पदमुक्त किया गया, क्योंकि वे सही आंकड़े दने में विफल साबित हुए थे। उन्होंने मुस्लिम आबादी को 36 फीसदी बताया था और उस समय कश्मीर की जनगणना नहीं हुई थी। बाद में उन्होंने स्वयं आंकड़ों को

संशोधित किया और मुस्लिम आबादी को 29 फीसदी ही बताया। ऐसा ही हिंदुओं की वृद्धि दर के आंकड़ों के साथ भी हुआ। इसको सांप्रदायिक रूप से बेहद संवेदनशील माना गया। हमारे यहां जनगणना या नागरिकों की पहचान की जो प्रणाली ह, उसके अंतर्गत हम घुसपैठियों को ढूंढ़ ही नहीं पाते। जब तक उसके लिए कोई कारगर तरीका नहीं खोजा जाता और उसके साथ जनमत खड़ा नहीं होता, मुझे नहीं लगता है कि यह संभव है। जैसे ही आप घुसपैठियों की पहचान करना शुरू करते हैं, उसका बड़े पैमाने पर विरोध करना शुरू कर दिया जाता है, यह कहा जाता है कि यह सांप्रदायिकता है। पहले यह मुद्दा उठा था कि यह केंद्र को करना चाहिए, लेकिन केंद्र ने पल्ला झाड़ लिया कि यह काम हमारा नहीं, राज्य सरकारों का है। घुसपैठियों को पहचान करने की प्रक्रिया इतनी कठिन और जटिल है कि न आने वालों को रोका जा सकेगा और न जो आ चुके हैं, उनको बाहर किया जा सकेगा, जब तक कि इस पर जनमत तैयार नहीं होता और सामान्य जन जागरूक नहीं होते।

उदय सिन्हा : आज के विमर्श से यह स्पष्ट हो जाता है कि जनगणना में जाति को शामिल करने के बजाय वर्तमान 2010 मं विकास के मानक तय किए जाने चाहिए और उसी के अनुरूप आँकड़े एकत्र किए जाने चाहिए। अतः हम कह सकते हैं कि जनगणना को जाति से संबद्ध करने के बजाय उसे विकास से संबद्ध किया जाना चाहिए।

प्रो. राकेश सिन्हा : आज का ब्रेन स्टार्मिंग कितना लाभप्रद होगा, यह सरकार की नीतियों एवं समाज के दृष्टिकोण को कितना प्रभावित कर पायेगा यह तो भविष्य को गर्भ में है। लेकिन मैं इस बात से सहमत हूँ, जैसा कि उदयजी ने कहा, कि नागरिक समाज के हस्तक्षेप से पूर्ण राजनीतिक हस्तक्षेप होता है। इसके पीछे दो कारण हैं। पहला कारण, भारतीय समाज में वचारिक नेतृत्व एवं राजनीतिक नेतृत्व का अभाव या हाशिये पर होना है। अस्सी के दशक के बाद राजनीतिक दलों का प्रभाव बढ़ा है। इसका सीधा असर राज्य की नीति निर्माण प्रक्रिया पर पड़ रहा है। और जो चीजें अबतक बची हुई थीं, वे भी अब धीमे-धीमे इसके शिकंजे में आ रही हैं। इसका नवीनतम उदाहरण जनगणना है। जाति आधारित जनगणना का विरोध हम दो कारणों से कर रहे हैं। पहला, जनगणना की तटस्थता, पवित्रता और इसका अराजनीतिक स्वरूप बना रहे और यह मानव संसाधन एव विकास की प्रक्रिया के बीच की एक कड़ी का काम करे। दूसरा, जातिविहीन समाज की स्थापना का घोषित अधिष्ठान सिर्फ सिद्धांत बनकर नहीं रह जाये। जातीय चेतना को किसी भी तरह से बढ़ने से रोकना समानतावादी समाज की स्थापना के लिए नितान्त आवश्यक है। अगर जातियों के आंकड़ों

की राज्य की नीति निर्माण हेतु आवश्यकता हो, तो हमें वैकल्पिक रास्ता अपनाना चाहिए। इस पर कोई विवाद होने की गुंजाइश ही नहीं ह।

रा.ज.र. का विषय राष्ट्रीय अखंडता एवं अस्मिता दोनो ही दृष्टियों से गंभीर है। इससे 'राष्ट्रीय' शब्द हटाना चाहिए और सिर्फ जनसंख्या रजिस्टर कहना चाहिए। स्वघोषित राष्ट्रीयता किसी दस्तावेज का विधिवत अंग कैसे हो सकता है? इसका पुलिस/जांच एजेंसियों द्वारा सत्यापन किया जाना चाहिए। केन्द्र सरकार अपनी कमियों को छिपाने एवं स्वार्थपूर्ण राजनीति के वशीभूत घुसपैठियों को वैधानिकता एवं सम्मान देने का काम कर रही है। असम, बंगाल एवं बिहार की सामाजिक संरचना और राजनीति को घुसपैठियों द्वारा प्रभावित किया जा रहा है। दूसरा बड़ा कारण सामाजिक विज्ञान में उत्तरोत्तर अवनति है। साठ–सत्तर के दशक में यह राज्य की नीतियों एव एजेंडा को प्रभावित करने में सक्षम था। आज यह सिर्फ शव परीक्षण का काम कर रहा है। इसकी स्वायत्तता समाप्त होती जा रही है। यही कारण है कि राजनीतिक हस्तक्षेप सभी विमर्शों एवं राज्य की नीतियों में प्रभावी भूमिका निभा रहा है। जनगणना के प्रश्न पर समाज वज्ञानिकों एवं नागरिक समाज दोनों को सक्रिय भूमिका निभाना चाहिए।

प्रो. आशीष बोस के साथ एक संवाद

भारत के प्रसिद्ध जनगणना विशेषज्ञ प्रो. आशीष बोस के साथ भारत नीति प्रतिष्ठान के शोधार्थियों द्वारा जनगणना के विभिन्न आयामों पर विस्तार से चर्चा हुई। प्रस्तुत है इसका संक्षिप्त अंश :

प्रतिष्ठान : ब्रिटिश पशासन का भारत में जनगणना शुरू करने का मुख्य उद्देश्य क्या था?

प्रो. बोस : भारत में जनगणना शुरू करने के लिए औपनिवेशिक प्रशासन ने महारानी विक्टोरिया को एक ज्ञापन दिया था, जिसका निचोड़ था कि "हमें इन लोगों को अवश्य सभ्य बनाना होगा" अत: इन लोगों के बारे में जानकारियाँ प्राप्त करनी होंगी और इसी आधार पर जनगणना को आवश्यक माना गया। ब्रिटिश शासन का उद्देश्य "बांटो और राज करो" था। उनके मन में यह भाव था कि स्थानीय लोगों को 'सभ्य बनाने' हेतु जनगणना करना जरूरी है।

प्रतिष्ठान : कृपया इस पर थोड़ा और प्रकाश डालें।

प्रो. बोस : इंग्लैण्ड में पहली जनगणना 1801 में हुई। भारत में यह 1872 में हुई। उस समय वे यह जानने के इच्छुक थ कि किस प्रकार के लोगों पर वे शासन कर रहे हैं। उन्हें यह लगा कि लोगों की प्रकृति के बारे में जानना आवश्यक है। वे समझते थे कि यह भारत में साम्राज्यवाद की पकड़ को मजबूत करने के लिए जरूरी है। उसके पीछे 'बांटो और राज करो' की ही नीति वस्तुत: काम कर रही थी। वे चाहते थे कि भारत के लोग जाति, धर्म एवं भाषा के प्रश्नों पर झगड़ते रहें। वे अपने उपनिवेश पर पश्चिम की पहचान आधारित राजनीति की अवधारणा को थोपना चाहते थे। वे आश्वस्त थे कि इस पकार की स्थिति साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन को भारत में कमजोर करेगो।

प्रतिष्ठान : 2011 की जनगणना के संदभ में यदि हम बात करें, तो क्या जाति को इसमें सम्मिलित करना चाहिए?

प्रो. बोस : अगर जनगणना में जाति को शामिल किया गया, तो इसका सत्यानाश हो जाएगा। जाति आधारित जनगणना को हमारी पहली जनगणना (1951) में अस्वीकृत कर

दिया गया और तब से जनगणना में जाति को शामिल न करना सरकार की घोषित नीति रही है। पर अब कुछ राजनीतिज्ञों की मांग पर सरकार इस नीति को बदल रही है। मैं समझता हूँ कि वह गलत कर रही है। अगर कल कोई यह कह दे कि विज्ञान या राजनीतिक विज्ञान का अमुक सिद्धांत गलत है, तब क्या यूपीए की सरकार इसे भी बदल देगी? मैं इस तरह के तर्कों में विश्वास नहीं करता हूँ।

प्रतिष्ठान : लोकतंत्र म कोई भी बात अंतिम रूप से निणोत नहीं हाती है, इसलिए हम जानना चाहते हैं कि जाति आधारित जनगणना में गलत क्या है?

प्रो. बोस : आपके इस सवाल के जवाब में मेरा एक प्रतिप्रश्न है: अंतत: जाति आधारित जनगणना का उपयोग क्या है? बहुत-सी जातियाँ और उपजातियाँ हैं। कुछ लोग तो अपनी ही जाति के भीतर अपने आपको दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठ मानते हैं। यह सब एकल नागरिकता के विकास में बाधक है। इस प्रकार के पहचान आधारित विवादों में पड़ने की आवश्यकता क्या है? हमें और भी अधिक जरूरी सवालों, जैसे-पानी, आवास और बेरोजगारी का निदान करना है। हम इन बुनियादी बातों पर क्यों नहीं अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं?

प्रतिष्ठान : जाति आधारित जनगणना का क्या असर होगा?

प्रो. बोस : देखिए, पाँच सौ साल पहले हम बैलगाड़ी पर चलते थे। अब हवाई जहाज से चलते हैं। अत: हमें बदलाव के साथ बदलना चाहिए। आज के समय की सबसे बड़ी समस्या रोजगार के उपयुक्त अवसरों की कमी है। हर व्यक्ति सरकारी नौकरी चाहता है। इसका कारण साफ है कि सरकारी नौकरी में निश्चितता और लचीलेपन का भाव होता है। इसके अतिरिक्त यह सेवानिवृत्ति के बाद पेंशन प्रदान करता है, जबकि निजी क्षेत्र 'उपयोग करो और फेंको' (Hire and tire) के सिद्धांत में विश्वास करता है। इस परिस्थिति में लोगों के लिए सरकारी नौकरी का आकर्षण स्वाभाविक ही है, और आरक्षण वहाँ तक पहुँचने का सबसे सुलभ मार्ग है। साथ ही यह उन्हें पहचान आधारित राजनीति करने के लिए प्रवृत्त करता है।

आजादी के समय से जाति की गणना जनगणना में कभी नहीं हुई है। लेकिन ऐसा लगता है कि सरकार कुछ नेताओं की माँगों के सामने झुक गयी है।

प्रतिष्ठान : क्या जनगणना को भविष्य के विकास के कार्यक्रमों से जोड़ा जा सकता है?

प्रो. बोस : हाँ, आजादी के बाद पहली दो जनगणनाओं में यह किया गया था। आज भी पंचवर्षीय योजनाओं के लिए आंकड़े जनगणना से ही लिय जात हैं।

प्रतिष्ठान : कृपया, कुछ ऐसे उदाहरण बताएं, जो दिखा सके कि जनगणना ने किसी खास समय में समस्याओं के हल में सफलतापूर्वक योगदान दिया हो।

प्रो. बोस : आर. गोपालस्वामी 1951 में जनगणना आयुक्त थे। भारत विभाजन को देखते हुए उन्होंने जनगणना के द्वारा शरणार्थियों (Refugees) और विस्थापितों के आँकड़े उपलब्ध कराए। उन्होंने सोचा था कि देश में खाद्य पदार्थों की समस्या होगी अत: जनगणना द्वारा खाद्य पदार्थों एवं जनसंख्या दोनों क आँकड़ प्राप्त करन चाहिए।

1961 में अशोक मित्रा जनगणना आयुक्त थे। उन्होंने भी धर्म और जाति के आँकड की आवश्यकता से इनकार किया। उन्हें लगा कि अर्थव्यवस्था मुख्य विषय है। इसी कारण से जनगणना की प्रश्नावली में शौचालयों की उपलब्धता, उपयोग किए जाने वाले वाहनों और बैंक खातों से सम्बन्धित प्रश्न जोड़े गए। इस आधार पर इन दोनों जनगणनाओं (1951 एवं 1961) को प्रगतिशील जनगणना कह सकते हैं।

प्रतिष्ठान : क्या आप सोचते हैं कि वर्तमान जनगणना की प्रश्नावली पूर्ण है और इसमें कुछ भी नया जोड़ने की आवश्यकता नहीं है?

पो. बोस : हमारी जनगणना की प्रश्नावली से एक प्रश्न गायब है। हम आय के बारे में नहीं पूछेंगे। हम सोचते हैं कि लोग आय के बारे में पूछने पर बुरा महसूस करेंगे। लोग यह भी सोचते हैं कि आय के बारे में बताने पर कर अदा करना पड़ेगा। मेरा कहना है कि वास्तविक आय पर आँकड़े लेने की आवश्यकता नहीं है। हमें विभिन्न आय वर्गों यथा 0-5000 रुपय, 5000-10000 रुपये और इसी तरह आगे भी आँकड़ एकत्र करन चाहिए। इससे गरीबी रेखा के नीचे रह रहे लोगों क वास्तविक आँकड़ प्राप्त करने में मदद मिलेगी। जब हमार पास आय पर आँकड़ होंग, तभी हम यह निर्णय कर पाएंगे कि गरीबी उन्मूलन में कितना समय लगेगा।

प्रतिष्ठान : क्या जनगणना प्रवासी जनसंख्या का ध्यान रख सकती है?

प्रो. बोस : बहुत अच्छा सवाल है। 1961 में अशोक मित्रा जनगणना आयुक्त थे। मैंने उन्हें बताया कि जनगणना की प्रश्नावली से एक प्रश्न अनुपस्थित है। मैंने कहा कि आप "जिस जिले में जन्म हुआ और जिस जिले में रह रहे हैं", यह प्रश्न तो पूछते हैं, लेकिन यह नहीं पूछते कि आप शहरी क्षेत्र में निवास कर रहे हैं या ग्रामीण क्षेत्र में, यदि इन दोनों कारकों को इसमें जोड़ दिया जाए, तो प्रवासन (Migration) के संदर्भ में चार तरह के आँकड़े मिल जाएंगे-ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र, ग्रामीण से ग्रामीण क्षेत्र, शहरी से ग्रामीण क्षेत्र और शहरी

से शहरी क्षेत्र। वे इससे सहमत हुए और इस सवाल को जनगणना की प्रश्नावली में शामिल कर लिया।

प्रतिष्ठान : जो छात्र छात्रावासों में रहते हैं, उनकी जनगणना कैसे होती है?

प्रो. बोस : वे 'संस्थागत जनसंख्या' कहे जाते हैं और उनकी गिनती सुचारु रूप से होती है।

प्रतिष्ठान : राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर के लिए भी जनगणना 2011 के साथ जानकारियाँ एकत्र की जा रही हैं। सामान्य व्यक्ति को इसके बारे में शायद ही कुछ मालूम है। आपकी दृष्टि में इसकी कितनी उपयोगिता है?

प्रो. बोस : मैं राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर बनाने के विचार से कभी सहमत नहीं होऊंगा। आपको पता होना चाहिए कि राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर में नाम दर्ज करने हेतु नागरिकों की उम्र 15 वर्ष या उससे अधिक है, जबकि मतदाता सूची में नाम दर्ज करने हेतु उम्र 18 वर्ष या उससे अधिक है और जनगणना में 0 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों की गिनती की जाती है। इन परिस्थितियों में दोनों एक साथ सही-सही कर पाना कैसे संभव है? जहाँ तक घुसपैठ का सवाल है, तो मेरा मानना है कि कोई चोर कभी भी यह स्वीकार नहीं करेगा कि वह चोर है। क्या कोई घुसपैठिया बताएगा कि वह घुसपैठिया है? 100 करोड़ लोगों के लिए रा. ज.र. तैयार करना एक मूर्खतापूर्ण विचार है। अगर सरकार ईमानदारी से घुसपैठ रोकना चाहती है, तो उसे सीमाओं पर नियंत्रण कक्ष स्थापित करना चाहिए।

प्रतिष्ठान : क्या घुसपैठ पर रोक लगाने के लिए वहां के निवासियों से उनकी दो पीढ़ियों का रिकॉर्ड मांगा जाना चाहिए?

प्रो. बोस : फिर तो यह जनगणना नहीं, पुलिस जांच हो जाएगी। बहुत सारे लोग कहेंगे कि हमारे पास तो कोई रिकार्ड ही नहीं है। हमारे समय में बहुत कम लोगों के पास जन्म प्रमाणपत्र हुआ करता था। दूसरी बात, गणनाकार को यह अधिकार भी नहीं है कि वह 'काउंटर' (उसकी सत्यता की जांच) करे। उन्हें उपलब्ध सूचना को मात्र रिकार्ड करना होता है। आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि जनगणना में ही सब पूछ लें। इसके लिए दूसरा तरीका भी तो अपनाया जा सकता है।

प्रतिष्ठान : क्या जनगणना शरणार्थियों की समस्या के समाधान में मदद कर सकती है?

प्रो. बोस : नहीं, यह सिर्फ विस्थापितों के स्थापन में मदद करती है।

प्रतिष्ठान : क्या भारत सरकार के पास विस्थापितों का आँकड़ा है?

प्रो. बोस : मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि सरकार के लिए यह जानना आवश्यक है कि कौन, किस राज्य में रहता है-त्रिपुरा में या मणिपुर मेंा

प्रतिष्ठान : 2011 की जनगणना को किस सबसे बड़ी चुनौती को सामने रखना चाहिए?

प्रो. बोस : मैं समझता हूँ कि 2011 की जनगणना का अपने सामने सबसे बड़ी चुनौती के रूप में बेरोजगारी को रखना चाहिए। हमें बेरोजगारी एवं युवाओं से संबंधित जानकारियाँ एकत्र करनी चाहिए। लेकिन देश में इस बात पर कोई सहमति नहीं है कि किस आयु वर्ग के लोग को हम युवा की श्रेणी में रखें। मैं समझता हूँ कि यह आयुसीमा 25 वर्ष से 40 वर्ष तक होनी चाहिए क्योंकि लोगों की औसत आयु अब बढ़ गई है।

प्रतिष्ठान : आर्थिक उदारीकरण के इस दौर में बाजार से जुड़ी शक्तियों के कारण समाज में असमानता आ गई है। इसके नकारात्मक प्रभाव के रूप में नक्सलवाद और माओवाद जैसी समस्याएं पैदा हो गई हैं, जिसके लिए राष्ट्र पहले से तैयार नहीं था। इन परिस्थितियों में इन समस्याओं के निदान के लिए जनगणना को कैसे उपयोगी बनाया जा सकता है?

प्रो. आशीष बोस : मनमोहन सिंह को इसका समाधान निश्चित रूप से जानना चाहिए! हमारे देश में नक्सलवाद की समस्या 160 जिलों में फैल चुकी है। इस हेतु मेरे विचार से जनगणना में दो प्रकार के आँकड़ों को एकत्र किया जा सकता है :

(क) युवा और उनकी समस्याएँ, और

(ख) बेरोजगारी और अर्द्धबेरोजगारी।

अर्थशास्त्र के मेरे अध्यापक कहा करते थे कि बेरोजगारी नाम की कोई चीज नहीं होती है। उदाहरण के लिए, यदि आप दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं और अचानक आपकी सेवा समाप्त कर दी जाती है, तो निश्चित रूप से आप अपने जीवन-यापन के लिए प्राइवेट रूप से ट्यूशन पढ़ाना शुरू करेंगे। इस परिस्थिति में आप अर्द्धबेरोजगार होंगे, न कि बेरोजगार, क्योंकि योग्यता के अनुसार आपको काम नहीं मिल पाया है। जनगणना में ऐसे लोगों को 'स्व-रोजगार' की श्रेणी रखा जाएगा, जो कि गलत है।

प्रतिष्ठान : जनगणना अधिकारियों के प्रशिक्षण के संबंध में आप क्या सुझाव देंगे?

प्रो. बोस : इसके लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं, परंतु और अच्छे परिणामों के लिए उनमें सुधार की आवश्यकता है।

प्रतिष्ठान : विश्वविद्यालय के छात्रों, शोधार्थियों एवं शिक्षकों को इस कार्य से क्यों नहीं जोड़ा जाता है?

प्रो. बोस : हाँ, यह अच्छा होगा, परंतु सिर्फ पैसे के लिए उनसे यह काम करवाना ठीक नहीं होगा। उदाहरणार्थ–जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्रों का पैसे के लिए जनगणना अधिकारी बनाना उचित नहीं होगा।

प्रतिष्ठान : भारत की जनगणना और अन्य देशों की जनगणना प्रक्रिया में क्या अंतर है?

प्रो. बोस : यहाँ मैं अमेरिका और ब्रिटेन का उदाहरण देना चाहूँगा। इन देशों में यह माना जाता है कि वहाँ की शत–प्रतिशत आबादी शिक्षित है अत: वहाँ जनगणना की प्रश्नावली ई–मेल के द्वारा अपने नागरिकों को भेज दी जाती है और उसमें लिखा होता है: 'प्यारे मित्र, कृपया इसे भर कर पुन: वापस करें। यदि किसी प्रकार की कठिनाई होती है, तो हमसे संपर्क करें'। वे घर–घर जाकर आँकड़ों को एकत्र नहीं करते। वे अपने नागरिकों की 'प्रजाति' को भी अपनी सूचना में रिकॉर्ड करते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि उनकी जनसंख्या हमारी जनसंख्या की तुलना में बहुत कम है, इसलिए उनका यह कार्य सही–सही और कम समय में पूरा हो जाता है।

प्रतिष्ठान : जनगणना की मुख्य विशेषता क्या होती है?

प्रो. बोस : जनगणना की मुख्यत: दो विशेषताएं होती हैं :

(1) यह 100 प्रतिशत गणना होती है।

(2) जनगणना अत्यंत ही अल्प अवधि में की जाती है। इस काल को संदर्भ बिंदु कहते हैं। यदि जनगणना प़रे साल की गइ तो परिणाम अपेक्षित नहीं होगा। आँकड़ों में तालमेल नहीं होगा। 2011 की जनगणना का संदर्भ बिंदु 9 फरवरी, 2011 से 28 फरवरी, 2011 है।

भारतीय जनगणना 2011: चुनौतियाँ और परिप्रेक्ष्य

-प्रो. अमिताभ कुंडु (सीएसआरडी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय)

2011 की भारत की जनगणना दुनिया की सबसे बड़ी जनगणना होगी, जिसमें सामाजिक-आर्थिक पहलुओं के अतिरिक्त व्यक्तिगत पहचान संबंधी जानकारियाँ एकत्र की जायेंगी। इन अटकलों के बावजूद कि 2011 की जनगणना को इसके वृहत स्वरूप के कारण सर्वेक्षण द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा, 2011 की जनगणना हेतु घरों को चिह्नित करने की प्रक्रिया 1 अप्रैल, 2010 से शुरू हो गयो है। वास्तविक जनगणना अगले वर्ष फरवरी के मध्य में होगो लेकिन इसके लिए तैयारी शुरू की जा चुकी है।

जनगणना के आंकड़ों की विश्वसनीयता

भारत की जनगणना एक नियमित अंतराल पर की जातो है। इसका आधार बहुत ही व्यापक है। इसका उद्देश्य जनसंख्या की तुलनात्मक रूप से स्थायी सामाजिक-आर्थिक प्रकृति संबंधी जानकारियों को बड़े पैमाने पर आंकड़ों के रूप में एकत्र करना है। इसे इस रूप में कभी भी नहीं ढाला गया कि इसके द्वारा किसी राष्ट्रीय नीति या कार्यक्रम का मूल्यांकन किया जाए क्योंकि ऐसा होने से जानकारी देने वाले पूर्वाग्रहों से ग्रसित हो सकते हैं। इस प्रकार जनगणना को इस संभावित खतरे से बचाकर रखा जा सका। यहाँ तक कि राष्टोय नमूना सर्वेक्षण जो इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नियमित अंतराल में किया जाता है, को भी सुपरिभाषित ढाँचे में ढाला गया है अर्थात इसे भी इस तरह संचालित किया जाता है कि जानकारी प्राप्त करने के दौरान प्रक्रिया किसी भी तरह से पूर्वाग्रह से ग्रसित न हो। चीन में जनगणना के लिए इस प्रकार की नियमितता और संरचना नहीं है। कभी-कभी तो नीतिगत बदलाव के तुरंत बाद ही इस प्रक्रिया को शुरू कर दिया जाता है। यहाँ जनसंख्या का अनुमान नमूना सर्वेक्षण द्वारा किया जाता है, जबकि भारत में ऐसा नही होता है। चीन में शहरी जनसंख्या में उन प्रवासी लोगों की गिनती नहीं की जाती है, जो बिना वैधानिक अनुमति (Haikou) के वहाँ रहते हैं। यही कारण है कि अभी तक वहाँ की शहरी जनसंख्या का सही-सही अनुमान

नहीं मिल पाया है। इन कारणों से भारत की जनगणना चीन की जनगणना की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय समझी जातो है।

निवास चिह्नित करना, राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर और विशिष्ट पहचान-पत्र

राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर के लिए कुछ खास अथवा चयनित विषयों पर जानकारियों को 2011 की जनगणना के पहले दौर (घर चिह्नित एवं घरों की गणना) के साथ एकत्र किया जा रहा है। इन जानकारियों का विशिष्ट पहचान-पत्र से संबंधित एजेंसी अथवा प्राधिकरण को सुपुर्द कर दिया जाएगा। जनसंख्या की गिनती फरवरी-मार्च 2011 में की जाएगी। यह एक संतोष का विषय है कि रा.ज.र. को जनगणना पर थोपा नहीं गया है, इसे मात्र घर चिह्नित करने की प्रक्रिया के साथ सम्बद्ध किया गया है।

सार्वजनिक रूप से विशिष्ट पहचान-पत्र बनाए जाने के बारे में जो उद्देश्य बताया जा रहा है, वह यह कि यह गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में मददगार सिद्ध होगा और उनकी त्रुटियों को दूर कर सकेगा। इसका दूसरा उद्देश्य देश की सुरक्षा एवं इससे जुड़ी समस्याओं का दूर करना है।

विशिष्ट पहचान-पत्र अयोग्य (Ineligible) लोगों (घुसपैठियों) को लाभार्थियों की सूची से बाहर रखेगा। इसके साथ-साथ यह किसी नीति अथवा कार्यक्रम लागू करने वाली एजेंसी के लिए "अन्य" (Others) को वंचित करने में मददगार होगा। यहाँ "अन्य" पद का अर्थ वैसे लागों अथवा व्यक्तियों से है, जो अन्य प्रांत से या जिले के बाहर से या निश्चित की गई अवधि (Cut off Date) के बाद आए हों। कई बड़े नगरों या शहरों में भूमि एवं झुग्गी बस्तियों के लिए निर्धारित की गई नीतियों की अवहेलना कर शहरीकरण किया जा रहा है। हाल में आए प्रवासियों को कुछ निश्चित नागरिक सुविधाओं से वंचित रखा जाता है। अत: विशिष्ट पहचान-पत्र शहरीकरण की गति को जो पहले से ही धीमी है, और भी धीमी कर देगा। यहाँ तक कि 11वीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेजों में भी इस घोषणा के बारे मे चिंता प्रकट की गयी है।

विभिन्न राज्य सरकारों का लोगों को समावेशित करने या बाहर (Exclusion) रखने के निर्णय के प्रति अलग-अलग दृष्टिकोण है। उनकी कार्यवाहियों के लिए वास्तव मे विशिष्ट पहचान-पत्र को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, लेकिन इतना तो निश्चित है कि यह महत्वपूण आँकड़ों के रूप में एक शक्तिशाली उपकरण उपलब्ध करवाएगा, जो इसका लाभ

प्राप्त करने के अयोग्य पात्रों को इससे अलग रखने में सहायक होगा। इस प्रकार, नागरिक समाज संगठनों और राजनीतिक दलों के द्वारा अपने निहित स्वार्थों के लिए इन आंकड़ों का उपयोग किया जा सकता है। प्रो. अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक "पहचान और हिंसा" मे यह दलील दी है कि एक निश्चित प्रकार की पहचान का उपयोग भेदभाव को जारी रखने एवं समुदायों के विरुद्ध हिंसा करने के लिए होता रहा है। अपने समाज में विद्यमान इन प्रवृत्तियों को देखते हुए सरकार कैसे यह सुनिश्चित कर सकती है कि इसका उपयोग सरकारी कार्यक्रमों पर निगरानी रखने के लिए किया जाएगा, न कि भेदभावपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण नीतियों को जारी रखने के लिए?

निस्संदेह, विशिष्ट पहचान-पत्र का प्रभाव प्रवास (Migration) पर नकारात्मक पड़ेगा, विशेषकर राज्यों के बाहर से आनेवाले प्रवासियों पर। 2001 की जनगणना के आंकड़ों क विश्लेषण से यह रहस्य उजागर हुआ है कि पचास प्रतिशत से अधिक प्रवासियों ने जो शहरों में नब्बे के दशक में आए थे, जनगणना अधिकारी को अपन वहाँ निवास करने की कुल अवधि सही अवधि से 10 वर्ष या उससे अधिक बतायी थो। सामाजिक स्तर पर अलग-थलग पड़ने और प्रशासनिक आवश्यकताओं के कारण हाल में आए प्रवासो बाध्य हुए हैं कि वे अपने निवास की अवधि को बढ़ा-चढ़ा कर बतायें। पर अब विशिष्ट पहचान-पत्र के कारण यह आसान नहीं होगा और लाभ प्राप्त करने के अयोग्य पात्रों को अलग करनेवाली शक्तियों अर्थात इस कार्य के लिए जिम्मेदार एजेंसियों (Exclusionary Forces) का एक प्रभावशाली उपकरण मिल जायेगा, जो ग्रामीण क्षेत्रों से विशेषकर राज्य के बाहर से आनेवालों को निषेध कर पाएँगे।

2011 की जनगणना संभवत: लोगों द्वारा दी जानेवाली त्रुटिपूर्ण जानकारियों पर गणना के बाद की जाँच के भय से अंकुश लगाने का काम करेगा। ऐसा इसलिए है कि लोगों के लिए अपना नाम रजिस्टर में दर्ज करवाने का एक अतिरिक्त कारण यह भी होगा कि इससे उन्हें एक औपचारिक पहचान मिलेगी। हालाँकि इसके कारण तथ्यां के गलत प्रस्तुतीकरण की संभावना बढ़ जाएगी, जिससे ये आँकड़े पूर्व के जनगणना आँकड़ों से तुलना करने योग्य नहीं रह जाएंग। जनसंख्या रजिस्टर के लिए वयस्कों की अंगुलियों के निशान एकत्र किए जा रहे हैं। इस संदर्भ में राज्य को यह सुनिश्चित करना होगा कि इन आँकडों का निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा दुरुपयोग नहीं हो। मेरा मानना है कि इन नाजुक मुद्दों से संबंधित पक्षों पर देश में अब तक अपेक्षित विमर्श नहीं हो पाया है।

विशिष्ट पहचान-पत्र तैयार करना मात्र दस प्रतिशत ही तकनीकी कार्य है। नब्बे प्रतिशत कार्य इसके संभावित उपयोगकर्त्ताओं एवं दुरुपयोगकर्त्ताओं क सामाजिक आयामों एवं राजनीतिक हितों को समझना है।

जाति आधारित जनगणना क्यों नहीं?

यह जानना यहाँ महत्वपूर्ण हो जाता है कि जनगणना की प्रश्नावली स्थायी सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं की जानकारी से जुड़ी होती है। रोजगार, व्यय, उद्योगों में निवेश (Input) और निर्गम (Output) जैसी जानकारियों को जनगणना द्वारा एकत्र नहीं किया जा सकता है। इसके लिए एक विस्तृत प्रश्नावली बनान और जानकारी को एकत्र करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक समय की आवश्यकता होगी। आगे यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि अशंकालिक जनगणना अधिकारी (अधिकांशतः स्कूली शिक्षक) इतने विस्तार से इस प्रकार की जानकारी एकत्रित करने के लिए प्रशिक्षित नहीं होते हैं। उपभोग एवं व्यय से संबंधित जानकारी राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा एकत्रित किया जाता है।

जाति आधारित आंकड़ा एकत्रित करना एक बड़ो चुनौतो होगी क्योंकि सिर्फ अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के अतिरिक्त 1931 की जनगणना के बाद से इस प्रकार की जानकारी एकत्र नहीं की गई है। यदि सरकार अपने कार्यक्रमों को उद्देश्यपूर्ण ढंग से लागू करना चाहती है, तो कोई इस तर्क से असहमत नहीं हो सकता कि सरकार को यह जानकारी नहीं चाहिए। यह तर्क कि इस प्रकार की जानकारी एकत्र करने से बचना चाहिए क्योंकि एकत्रोकरण की प्रक्रिया से जातीय भेद एवं शत्रुता बढ़ेगी, उतना महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि उभरती हुई समस्याओं का समाधान करने के लिए ऐसे आँकड़ों की नितांत आवश्यकता है। लेकिन जनगणना के द्वारा इस प्रकार क आँकड़ा को एकत्रित करना तथ्यों क गलत प्रस्तुतीकरण को प्रोत्साहित करेगा। जब लोगों को यह मालूम होगा कि इन आँकड़ों का उपयोग नीतियों एवं कार्यक्रमों के निर्माण और निगरानो हतु सकारात्मक कदम उठाने के लिए सरकार द्वारा किया जाएगा, तो वे तथ्यों के गलत प्रस्तुतीकरण हेतु प्रोत्साहित होंगे। यह सर्वविदित है कि साठ के दशक में पंजाब में लोगों ने भाषा संबंधित गलत जानकारी दी थी क्योंकि इन आँकड़ों का उपयोग राज्य के पुनर्गठन के लिए होना था। पुनः लोगों की यह अपेक्षा कि इन आँकड़ों के आधार पर ही नीतियाँ बनेंगी, झुग्गी बस्तियों (Slums) के बारे में जनगणना के द्वारा, यहाँ तक कि 2001 की जनगणना में भी सही जानकारी नहीं मिल पाई

है। यही कारण है कि योजना आयोग नीतियों के निर्माण हेतु इन आँकड़ों का उपयोग नहीं कर पाया क्योंकि बहुत से राज्यों के अधिकारियों ने झुग्गी बस्तियों से संबंधित आँकड़े को बढ़ा-चढ़ा कर पस्तुत किय थे, उन्हें मालूम था कि इन्हीं आँकड़ों के आधार पर संसाधनों का आवंटन किया जाएगा।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत में भी जनगणना क आँकड़े कार्यक्रमों में परिवर्तन के लिए बहुत ही आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त सरकार को बड़ी नीतियों मे परिवर्तन या प्रमुख कार्यक्रमों (यथा नरेगा, JLNURM) के प्रभावों के मूल्यांकन हेतु विश्वसनीय सामाजिक-आर्थिक सूचनाओं की आवश्यकता होती है। नीतियों से संबंधित विशिष्ट आँकड़ों (सूचनाओं) को प्राप्त करने की आवश्यकता तो है, परंतु जनगणना के द्वारा यह कार्य नहीं होना चाहिए क्योंकि यह प्रश्नावली से मिलने वाली सभी जानकारियों को तोड़-मरोड़ देगा। किसी भी राष्ट्रीय स्तर की रिसर्च एजेंसी को जो जनगणना से पूरी तरह अलग/स्वतंत्र हो, इस प्रकार की जानकारी एकत्रित करने की जिम्मेदारी दी जा सकती है। यहाँ यह गौर करन लायक है कि इन्टरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पांपुलेशन साइन्सेज और नेशनल काउंसिल ऑफ अप्लाइड इकनांमिक रिसर्च जैसी एजेंसी स्वास्थ्य, परिवार कल्याण और मानव विकास आदि से संबंधित आंकड़े एकत्रित कर रही हैं, जो राष्ट्रीय स्तर के अन्य आँकड़ां से पूर्णतया अलग हैं।

इसलिए जाति आधारित आँकड़े किसी विश्वसनीय और सामर्थ्यवान राष्ट्रीय स्तर की संस्था के द्वारा ही एकत्रित किय जान चाहिए। लेकिन इसे जनगणना या राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आँकड़े एकत्रित करने की प्रक्रिया से पूर्णत: अलग रखा जाना चाहिए।

(प्रो. अमिताभ कुंडु प्रसिद्ध जनगणना विशेषज्ञ हैं। वे शहरीकरण और जनगणना, आँकड़ा विश्लेषण आदि क्षेत्रों में अपने एकाधिकारिक ज्ञान एवं अनुभव के लिए जाने जात हैं। संप्रति वे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में (CSRD/SSS) विभाग म प्रोफेसर हैं।)

यह शोध-पत्र उन्होंने भारत नीति प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली द्वारा 10 मई 2010 को आयोजित 'ब्रेनस्टार्मिंग सेशन' के लिए विशेष रूप से लिखा है।

परिशिष्ट–IV

अन्य पिछड़े वर्गों के लिए गठित कुछ आयोगों की संक्षिप्त सूची

क्र.सं.	राज्य	वर्ष	कमेटी/आयोग	अनुशंसाएं	स्थिति
1.	आंध्र प्रदेश	1968	मनोहर प्रसाद आयोग	पिछड़े वर्ग की विभिन्न श्रेणियों के लिए सरकारी सेवाओं में 30 प्रतिशत आरक्षण	
		1975	वीरप्पा कमिटी	25 प्रतिशत आरक्षण	
		1970	के.एम. अनंथरामन आयोग		सर्वोच्च न्यायालय ने आयोग की अन्शंसाओं के आधार पर जारी सरकारी आदेश को रोक दिया।
		1982	मुरलीधर राव आयोग	44 प्रतिशत आरक्षण	
2.	बिहार	1951	बिहार सरकार	छात्रवृति का लाभ देने के लिए 109 जातियों की सूचो तैयार की गयी।	
		1971	मंगेरी लाल आयोग	24 प्रतिशत आरक्षण चिकित्सा एवं अन्य व्यावसायिक संस्थानों में तथा	चुनौती नहीं दी गयी।

				26 प्रतिशत सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी सेवाओं में।	
		1978	कर्पूरी ठाकुर आयोग	सरकारी सेवाओं में 20 प्रतिशत आरक्षण	
		1994	यू.एन. सिन्हा	स्वीकार नहीं किया गया	
3.	गुजरात	1972	ए.आर. बक्सी	82 जातियों की पहचान की गई, चिकित्सा, इंजोनियरिंग एवं अन्य व्यावसायिक संस्थानों में 10 प्रतिशत आरक्षण तथा वर्ग III और वर्ग IV की सेवाओं मे 10 प्रतिशत एवं वर्ग I एवं और II को सेवाओं में 5 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था।	
		1981	सी.वी. राणे	28 प्रतिशत आरक्षण	
		1987	आर.सी. मांकड	रिपोर्ट नहीं सौंपा	
4.	हरियाणा	1991	गुरनाम सिंह	सरकारी सेवाओं में 27 प्रतिशत आरक्षण	चुनौती नहीं दी गयी।
5.	हिमाचल	1951	हिमाचल प्रदेश सरकार	पूर्व पंजाब राज्य द्वारा जारी की गई ओ.बी.सी.की सूचो पर आधारित	
		1970	हिमाचल प्रदेश सरकार	आर्थिक आधार	
		1993	हिमाचल प्रदेश सरकार	ओबीसी के लिए 20 प्रतिशत आरक्षण	
6.	जम्मू कश्मीर	1967	पी.बी. गजेन्द्रगडकर आयोग	उच्च स्तरीय कमेटी द्वारा जातियों/समुदायों की पहचान करने की अनुशंसा	

		1969	जे.एन. वजीर कमेटी	ओबीसी के लिए 42 प्रतिशत आरक्षण	
		1976	ए.एस. आनंद कमेटी	सरकारी नौकरियों एवं शैक्षिक संस्थानों में 42 प्रतिशत आरक्षण	
7.	कर्नाटक	1918	सर एलसी मिलर	पिछड़े समुदायों के लिए राज्य की सेवाओं में भर्ती एवं शिक्षा मे विशेष सुविधायें	
		1961	नगन गाडा कमेटी	व्यावसायिक एवं तकनीकी संस्थानों मं आरक्षण	
		1975	हवनूर आयोग	ओबीसी के लिए शिक्षा एवं सरकारी सेवाओं में 16 प्रतिशत आरक्षण	
		1985	वेंकट स्वामी आयोग	ओबीसी के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण	
		1990	चेनप्पा रेड्डी आयोग		
8.	केरल	1961	विश्वनाथन कमेटी	तकनीकी एवं व्यावसायिक कॉलेजों में 40 प्रतिशत तथा सरकारी सेवाओं में सीधी भर्ती हेतु अधिकतम 25 प्रतिशत आरक्षण	
		1965	जी. कुमारा पिल्लै	ओबीसी के लिए सरकारी नौकरियों में 40 प्रतिशत आरक्षण	
		1970	एम.पी. दामोदरन	ओबीसी के लिए सरकारी नौकरियों में 40 प्रतिशत आरक्षण	

9.	मध्य प्रदश	1980	रामजी महाजन	शिक्षण संस्थानों एवं सरकारी नौकरियों में 35 प्रतिशत आरक्षण	
		1984	मध्य प्रदेश सरकार	ओबीसी के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण	
10.	महाराष्ट्र	1961	बी.डी. देशमुख	ओबीसी के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण	
11.	पंजाब	1951	कमेटी	ओबीसी के लिए 2 पतिशत आरक्षण	
		1965	वृष भान कमेटी	ओबीसी के लिए शिक्षण संस्थानों एवं सरकारी नौकरियों में 5 प्रतिशत आरक्षण	चुनौती नहीं दो गयी।
		1975	हरचरण सिंह आयोग	ओबीसी के लिए शिक्षण संस्थानों एवं सरकारी नौकरियों में 15 प्रतिशत आरक्षण	
12.	तमिलनाड्	1885	प्रोविंसियल सरकार	कोड 1885 के आधार पर आर्थिक सहायता	
		1927	मद्रास प्रेसीडेंसी	जातीय सरकार के द्वारा ओबीसी के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण	
		1969	ए.एन. सत्तनाथन आयोग	17 प्रतिशत पिछड़ वर्गों एवं 16 प्रतिशत अति पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण	
		1982	जे.ए. अम्बाशंकर आयोग	सरकारी सेवाओं में 5 प्रतिशत आरक्षण	

13.	उत्तर प्रदेश	1975	छेदीलाल आयोग	सरकारी सेवाओं, तकनीकी/ व्यावसायिक संस्थानों में 15 प्रतिशत आरक्षण	
14.	गोवा		कोई आयोग या कमेटी नहीं बनायी गयी। चार समुदायों को ओ.बी.सी. घोषित किया गया।		इस सूची को उच्च न्यायालय में 1986 में चुनौती दी गयी, किंतु न्यायालय ने याचिकाकर्ता की अपील को खारिज कर दिया। अब यह मामला सुप्रीम कोर्ट में विचाराधीन है।

भारत में जनगणना का संक्षिप्त इतिहास

वैसे तो 'जनगणना' का शाब्दिक अर्थ 'जन की गणना' अर्थात लोगों की गणना करना होता है, किंतु समकालीन परिप्रेक्ष्य में इसके व्यापक आयाम परिलक्षित हुए हैं। अब जनगणना जनसंख्या की गणना तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि इसके माध्यम से समाज और देश के विभिन्न पक्षों की सूचनाओं को संग्रहित कर उसका उपयोग देश और समाज हित में करना हो गया है। इस दृष्टि से सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास तथा सरकार की नीति निर्माण की प्रक्रिया एवं उसके मूल्यांकन में जनगणना का महत्व व्यापक और संवेदनशील हो गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जनगणना का एक महत्वपूर्ण गुणात्मक पक्ष होता है, जो देश की राजनीतिक व्यवस्था एवं सामाजिक परिस्थितियों से संदर्भित होता है।

भारत में यद्यपि जनसंख्या का रिकॉर्ड रखने की परंपरा प्राचीन काल से ही प्रचलित रही है, तथापि सरकार के द्वारा औपचारिक रूप से जनगणना का कार्य उन्नीसवीं सदी के अंत में व्यवस्थित रूप से शुरू हुआ। प्राचीन काल में यह एक राजकीय एवं सामुदायिक कार्य होता था, किंतु कालांतर में इसे सिर्फ सरकार द्वारा किया जाने लगा। औपनिवेशिक काल की जनगणना के दस्तावेजों में भारत की इस पुरानी परंपरा के सम्बंध में कहा गया है कि "अनेक प्रांतों में निश्चित समयांतराल में जनसंख्या की गणना एक बहुत पुरानी व्यवस्था के रूप में स्थापित थी।"[69]

औपनिवेशिक युग में जनगणना के पीछे "शासक" एवं "शासित" की मानसिकता थी। औपनिवेशिक प्रशासन के समक्ष जनगणना के स्पष्ट उद्देश्य देश की सामाजिक, भाषायी, सांस्कृतिक एवं धार्मिक आयामों की जानकारी प्राप्त कर 'पहचान की राजनीति' को प्रश्रय

---

[69] भारत की जनगणना रिपोर्ट 1911, वॉल्यूम 1 पार्ट 1, कलकत्ता प्रोविंस, गवर्नमेंट प्रिंटिंग 1913

देना था। यह उसकी 'विभाजित करो एवं राज करो' की प्रशासनिक नीति के लिए आवश्यक था। जनगणना के पीछे उनके मन में 'शासितों को सभ्य बनाने का' स्वघोषित मिशन था। औपनिवेशिक काल में देश के राजनीतिक घटनाचक्र ने भारत की जनगणना को पूरी तरह से निर्देशित किया। 1861 में जनगणना का सरकारी प्रयास 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857-59) से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण बहुत सफल नहीं हो पाया। इसके लिए दूसरा प्रयास 1871-72 में हुआ। यह भी तकनीकी रूप से व्यवस्थित जनगणना नहीं थी। इसके कई कारण थे-एक तो निश्चित समय सीमा के विपरीत लंबी अवधि में जनगणना का कार्य किया जाना एवं दूसरा, राजनीतिक कारणों एवं वित्तीय कठिनाइयों ने भी इस पर नकारात्मक प्रभाव डाला, जिससे इसकी प्रामाणिकता पर प्रश्न-चिह्न लग गया।[70] दूसरी ओर, इस दौरान औपनिवेशिक सरकार की जनगणना के पीछे 'बांटो और राज करो' की नीति भी उभरकर सामने आ गयी। औपनिवेशिक प्रशासन 1857 के विद्रोह से उपजी भावना एवं राष्ट्रीय एकता पर चोट पहुँचाने के लिए विभाजनकारी नुस्खे अपना रहे थे।

1870-72 की जनगणना से बंगाल में मुस्लिम जनसंख्या की एक रूपरेखा सरकार के समक्ष उजागर हुई। तब ब्रिटिश सरकार ने विलियम विल्सन हंटर (भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी और 'द बंगाल गजट' के संपादक) को जिम्मेदारी सौंपी कि वह मुस्लिमों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक हालत पर रिपार्ट सौंपे। विलियम हंटर ने यह काम बखूबी किया। उसने अपनी दूषित सोच और कुटिल मानसिकता से मुस्लिम समाज के पिछड़ेपन को समाज एवं राष्ट्रवाद पर आघात करने का उपकरण बना दिया। हंटर की रिपोर्ट का बाद में साम्प्रदायिक तत्वों ने साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के लिए इस्तेमाल किया, जो अंततः पाकिस्तान के निर्माण में मददगार साबित हुआ। जनगणना के परिणामों को आधार बनाकर 1905 में बंगाल का विभाजन कर दिया गया। यद्यपि यह अपने आप में एक संपूर्ण जनगणना नहीं थी, पर "पिछले अनुभवों के आधार पर 17 फरवरी, 1881 को प्रथम नियमित जनगणना की प्रक्रिया शुरू हुई।"[71] दूसरी जनगणना 26 फरवरी, 1891 को शुरू हुई और इसमें भी पिछली जनगणना (1881) की प्रक्रिया को अपनाया गया।[72] तीसरी जनगणना 1 मार्च, 1901 को

---

[70] भारत की जनगणना रिपोर्ट 1911, वॉल्यूम 1 पार्ट 1, कलकत्ता प्रोविंस, गवर्नमेंट प्रिंटिंग 191

[71] भारत की जनगणना रिपोर्ट 1911, वॉल्यूम 1 पार्ट 1, कलकत्ता प्रोविंस, गवर्नमेंट प्रिंटिंग 1913

[72] वही

और चौथी 10 मार्च, 1911 को शुरू हुई। 1911 की जनगणना पर प्लेग के प्राकृतिक प्रकोप की छाया पड़ी, जिसके फलस्वरूप देश के कुछ शहरों यथा गया, नागपुर, इंदौर आदि को जनगणना की प्रक्रिया से अलग रखना पड़ा।[73]

बीसवीं सदी के दूसरे दशक से साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन ने औपनिवेशिक राजनीति को ध्वस्त करना शुरू कर दिया। इसका स्वाभाविक प्रभाव जनगणना पर भी पड़ा। वर्ष 1921, 1931 एवं 1941 में हुई तीनों ही जनगणना राजनीतिक चालबाजियों का शिकार बन गयी। औपनिवेशिक सरकार की जनगणना रिपोर्ट में उल्लेख था कि 1921 की जनगणना पर असहयोग आंदोलन का नकारात्मक प्रभाव पड़ा, यद्यपि ब्रिटिश सरकार अंतिम समय में इस कार्य हेतु महात्मा गांधी की शुभकामना लेने में सफल रही थी। इसके बाद 1931 की जनगणना में मुश्किलें और भी बढ़ीं। रिपोर्ट के अनुसार, "वर्ष 1921 की जनगणना की तरह इस जनगणना का दुर्भाग्य रहा कि यह भी असहयोग आंदोलन की लहर एवं महात्मा गांधी और उनके समर्थकों की (सत्याग्रह) यात्रा के साथ टकराया।" 1931 की जनगणना के समय ब्रिटिश सरकार ने इस कार्य हेतु महात्मा गांधी से शुभकामना संदेश प्रेषित करने की अपील की किंतु महात्मा गांधी ने इस अपील की अनदेखी कर दी। आगे कहा गया कि "1921 की जनगणना के अंतिम समय में उन्होंने इसकी सफलता के लिए जो आशीर्वाद दिया था, उसकी जरूरत इस समय भी थी, पर इस बात की जानकारी उन्हें (महात्मा गांधी को) भी नहीं थी कि किसी ने जनगणना के बहिष्कार की अपील जारी की है। कुछ कांग्रेसी नेताओं को ऐसा करना अच्छा लगा। यद्यपि उन्होंने जनगणना के कार्य को आपत्तिजनक नहीं माना, तथापि सरकार को परेशान करने का अवसर भी नहीं छोड़ा और 11 जनवरी, 1931 के दिन को कांग्रेस कमेटी ने जनगणना बहिष्कार रविवार के रूप में मनाया।"[74]

1931 और उसके पूर्व की जनगणना रिपोर्ट में जनसंख्यात्मक आँकड़ों का विश्लेषण एक तो 'धर्म' के आधार पर तथा दूसरा, 'नस्ल, जाति और जनजाति' के आधार पर किया गया। परंतु 1941 की जनगणना में पूर्व की व्यवस्था को बदल दिया गया और दोनों आयामों को मिलाकर 'धर्म' एवं 'जाति, जनजाति तथा नस्ल' का एक आधारभूत पैमाना बनाया गया।[75]

---

[73] भारत की जनगणना रिपोर्ट 1911, वॉल्यूम 1 पार्ट 1, पृ. 6

[74] भारत की जनगणना 1931, वॉल्यूम 1 पार्ट 1, पृ. 10, दिल्ली: मैनेजर ऑफ पब्लिकेशंस 1933

[75] सीरीज 2, भारत की जनगणना, पृ. 2

1931 के विपरीत 1941 की जनगणना में अलग-अलग जातियों या जनजातियों के आंकड़े नहीं प्रस्तुत किय गय।[76] 'अनुसूचित जातियों', 'जनजातियों' और 'एंग्लो इंडियन' के समूहों के रूप में आंकड़े प्रस्तुत किये गए।

1941 की जनगणना पर साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के साथ-साथ द्वितीय विश्वयुद्ध का भी प्रभाव पड़ा। 1872 एवं 1941 की जनगणना के आंकड़ों का प्रयोग देश के विभाजन के लिए किया गया।

स्वतंत्र भारत की पहली जनगणना 1951 में सफलतापूर्वक संपन्न हुई। सरकार ने इसे तार्किक आधार प्रदान किया। इसे विकास के आगामी, इच्छित और अपेक्षित कार्यक्रमों से जाड़ा गया। 1951 की जनगणना की नीतिगत पृष्ठभूमि सरदार पटेल ने तैयार की थी। जनगणना रिपोर्ट में गणना का आधार "हम भारत के लोग" को माना गया न कि भारत के लोगों को। जनगणना राष्ट्र की प्रगति, मानव संसाधन की वृद्धि एवं नीतियों के निर्माण के लिए आधार के रूप मं उभर कर आयी। औपनिवेशिक जनगणना के विभाजक तत्वों से इसे नीति एवं व्यवहार में पृथक रखा गया।

---

[76] 1941 की जनगणना में समुदायों को निम्न रूप में प्रदर्शित किया गया : Hindus-SC. Hindus-Others, Muslims, Indian Christians, Anglo Indians, Other Christians, Sikhs, Jain, Parsees, Budhists, Jews, Tribes, Others.

गतिशील होने वाली (एक जाति से दूसरी जाति में) जातियों की सूची

20वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशक में गतिशील होने वाली जातियाँ*

पुराना नाम	1921 में दावा	1931 में दावा
कमार	क्षत्रिय	ब्राह्मण
सोनार	क्षत्रिय	ब्राह्मण
	राजपूत	वैश्य
सुत्रादर	वैश्य	ब्राह्मण
नाई	ठाकुर	ब्राह्मण
नापित	बैद्य	ब्राह्मण
रवानी (कहार)	वैश्य	क्षत्रिय
मोची	बैद्य ऋषि	
चमार		गहलोत राजपूत

* 1921 एवं 1931 की जनगणना रिपोर्ट देखें